उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAST-109(N)
नाट्यशास्त्र

खण्ड – क : भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र 3–38

इकाई 1 : ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का परिचय एंव प्रथम अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या 5–22

इकाई 2 : द्वितीय अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या एंव समीक्षात्मक प्रश्न एंव उत्तर 23–42

खण्ड – ख : धनञ्जयकृत दशरूपक 39– 81

इकाई 1 : ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का परिचय एंव प्रथम प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या 43–60

इकाई 2 : तृतीय प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या एवं समीक्षात्मक प्रश्न एवं उत्तर 61–81

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 सीमा सिंह	कुलपति
	उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 राम किशोर शास्त्री	आचार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 के0जे0 नसरीन	आचार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 हरिदत्त शर्मा	आचार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ0 स्मिता अग्रवाल	सहायक आचार्य, मानविकी विद्याशाखा
	उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो0 राजेश्वर मिश्र	कुरूक्षेत्र, विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

लेखक

प्रो0 मन्जुला जायसवाल	इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 विनोद कुमार गुप्त	आचार्य, मानविकी विद्याशाखा
	उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 स्मिता अग्रवाल	उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

संयोजक

डॉ0 स्मिता अग्रवाल	सहा0 आचार्य, मानविकी विद्याशाखा
	उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

2023 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2023

ISBN- 978-93-83328-33-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारा एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार सिंह उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज –2023

मुद्रक : सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूसन प्रा०लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट मुम्बई।

CENTOS-004

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAST-109(N)
नाट्यशास्त्र

खण्ड – क
भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र 3–38

इकाई – 1 ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का परिचय एंव प्रथम अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या 5–22

इकाई – 2 द्वितीय अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या एवं सम्भावित समीक्षात्मक प्रश्न एवं उत्तर 23–42

पाठ्यक्रम – परिचय

यह पाठ्यक्रम परास्नातक संस्कृत कार्यक्रम के अन्तर्गत तेरहवें तथा वर्तमान में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 अनुसार वे प्रश्नपत्र के अन्तर्गत है। इस पाठ्यक्रम में भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' तथा द्यनंजय कृत `दशरूपक` का अध्ययन किया जाएगा।

प्रथम खण्ड 'क' में दो इकाईयाँ हैं। प्रथम इकाई में ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार का परिचय तथा नाट्यशास्त्र के अध्यायों की संक्षिप्त रूपरेखा तथा प्रथम अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या प्रस्तुत की गई **है।**

द्वितीय इकाई में नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या तथा सम्भावित समीक्षात्मक प्रश्न एवं उत्तर दिए गए हैं।

द्वितीय खण्ड 'ख' में भी 2 इकाईयाँ हैं। इन इकाईयों में धनंजय कृत 'दशरूपक' के प्रथम तथा तृतीय प्रकाश की काटिकाओं के साथ–साथ शिक्षार्थी ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का परिचय प्राप्त कर सकेगे। इस इकाई में सम्भावित प्रश्न एवं उत्तर भी दिये गये है।

इकाई – 01 ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 नाट्यशास्त्र का परिचय

1.4 ग्रन्थकार का परिचय

1.5 प्रतिपाद्य विषय

1.6 प्रथम अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या

1.1. उद्देश्य

खण्ड 'क' की इकाइयों को पढ़ने के बाद शिक्षार्थी भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र का समग्र परिचय प्राप्त कर सकेंगे तथा ग्रन्थकार भरतमुनि का परिचय प्राप्त कर सकेगे। नाट्यशास्त्र की प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों की कारिकाओं का अर्थ समझ सकेंगे। खण्ड 'क' का अध्ययन कर शिक्षार्थी नाट्य विधा का परिचय प्राप्त करने में समर्थ होंगे। इस खण्ड के अध्ययन से शिक्षार्थियों को अध्यायों से सम्बन्धित समीक्षात्मक प्रश्नों की व्याख्या करने में सरलता होगी।

1.2 प्रस्तावना

आचार्य भरतकृत नाट्यशास्त्र नाट्यविद्या का प्रमाणिक ग्रन्थ है। आचार्य भरत के पूर्ववर्ती एवं परवर्ती आचार्यो के नाम तो मिलते हैं परन्तु उनके ग्रन्थ नहीं मिलते हैं। नाट्यविद्या के सम्बन्ध में भरतमुनि की रचना नाट्यशास्त्र ही उपलब्ध एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है। नाट्यशास्त्र के छब्बीस अध्यायों में नाट्य के अंग–प्रत्यंगों की चर्चा है। इसी कारण पाश्चात्य एवं पूर्ववर्ती सभी विद्वानों ने नाट्यशास्त्र की महत्ता स्वीकार की है। नाट्यशास्त्र में दृश्य एवं दोनों प्रकार के काव्यों का सर्वांगीण विवेचन किया गया है।

1.3 नाट्यशास्त्र का परिचय

ग्रन्थ परिचय– भरतमुनिप्रणीत नाट्यशास्त्र ईसा की लगभग द्वितीय शताब्दी की रचना ह। इस ग्रन्थ में 36 अध्याय है। इसे पंचम वेद भी कहा जाता है। भरतमुनि ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत का अंश, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस को ग्रहण कर इस नाट्यवेद का निर्माण किया है। सर्वप्रथम ब्रह्मा ने भरत को इस विद्या का उपदेश किया था। प्रारम्भ में भरत ने केवल तीन वृत्तियों भारती, सात्त्वती और आरभटी का इसमें प्रयोग किया, बाद में सभी पात्रों (अप्सराओं) की सहायता से कैशिकी वृत्ति का समावेश किया। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र का प्रणयन प्राणियों के सांसारिक दुःखों से (चाहे वह कुछ समय के ही लिये सही) छुटकारा पाने और मनोविनोदार्थ की है।

यह नाट्यविधा सुनने में 'मधुर एवं देखने' में सुन्दर मानी जाती है।

नाट्यविधा उन्हीं समर्थसाहित्यकार के लिए उपयोगी होती है जिनमें इसे ग्रहण करने, धारण, ज्ञान एवं प्रयोग करने की शक्ति होती है।

नाट्यशास्त्र की अनेक व्याख्यायें की गयी हैं। नाट्यशास्त्र पर कोई वर्तिक भी लिखा गया था जिसके कर्ता श्रीहर्ष या हर्ष थे। भावप्रकाशन में सुबन्धु का भी नाट्य विषय के आचार्य के रूप

में उल्लेख मिलता है।

नाट्य केवल अनुकरण मात्र नहीं है, उससे कहीं अधिक है। उसमें इच्छा, ज्ञान और कर्म शक्ति की नितान्त आवश्यकता होती है जो मनुष्य में निसर्गतः होती है। देवताओं में इसका सर्वथा अभाव होता है। देवता सिद्धि दे सकता है साधना नहीं कर सकता। नाटक साधना का विषय है। इसीलिए भरतमुनि ने ब्रझ से ग्रहण कर इस विद्या की शिक्षा अपने सौ पुत्रों को दी।

प्रारम्भ में भरतमुनि ने इसमें केवल तीन वृत्तियों – भारती, सात्त्वती, आरभटी का ही योग किया था। भरत पुत्रों ने तीन वृत्तियों का प्रयोग तो सहज जात्या कर दिया था, किंतु, कैशिकी वृत्तिका वे प्रयोग नहीं कर सके थे, क्योंकि इस वृत्ति के प्रयोग में सुकुमार साज सज्जा, स्त्रीसुलभ चेष्टायें, कोमल श्रृंगारोपचार की नितान्त आवश्यकता थी, अतः ब्रह्मा ने अप्सराओं की सृष्टि की और इस प्रकार नाट्यवेद में स्त्रियों का प्रवेश हुआ।

1.4 ग्रन्थकार का परिचय

आचार्य भरतमुनि

नाट्यशास्त्रीय एवं काव्यशास्त्रीय चिन्तना में जो आदि आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं, उनका नाम है –भरत मुनि। भरतमुनि ही वह व्यक्तित्व हैं, जिन्हें संस्कृत काव्यशास्त्रीय आचार्यों में प्रथम आचार्य का गौरव प्राप्त है एवं नाट्यशास्त्रीय संविधान में वैश्विक प्रतिष्ठा प्राप्त हैं।

संस्कृत–वाड्.मय के इतिहास में भरत नाम से पाँच व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है – दशरथ पुत्र भरत, दुष्यन्त पुत्र भरत, मान्धाता के प्रपौत्र भरत, जडभरत तथा नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि।

संस्कृत–साहित्य के आचार्य एवं महाकवि अपनी यशः प्राप्ति–लोलुपता के कारण एवं निरभिमानिता प्रदर्शित करने के लिये अपनी कृतियों में या ग्रन्थों में अपने विषय में प्रायः कुछ भी नहीं लिखा है, जिस कारण उनका जन्म, समय, स्थान आदि के विषय में इदमित्थं रूप से कुछ भी कह सकना सम्भव नहीं है। अतः प्रायः अन्तः साक्ष्य के अभाव में बहिःसाक्ष्य के आधार पर ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। आचार्य भरतमुनि भी इससे अछूते नहीं रहे है, अतः जन्म–समय एवं स्थान के विषय में निर्णय करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। भरतमुनि के व्यक्तित्व को जहाँ एक ओर कतिपय विद्वान ऐतिहासिक मानते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ विद्वानों ने इन्हें काल्पनिक माना है। ऐतिहासिक व्यक्ति मानने वालों ने इनका जन्म–समय 500 ई0 पू0 से ईशा की प्रथम शताब्दी माना है, जिनमें कतिपय साक्ष्यों को दिया जा रहा है –

प्रथम शताब्दी में उत्पन्न बौद्ध कवि अश्वघोष द्वारा प्रणीत 'सारिपुत्र प्रकरण' नामक नाट्यग्रन्थ खण्डितावस्था में प्राप्त हुआ है, जिस पर नाट्यशास्त्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। अतः इनका समय ई0 की प्रथम शती से पूर्व हो सकता है। भोला शड्.कर व्यास ने भरतमुनि के स्थिति काल के विषय में कुछ ऐसे साक्ष्य दिये हैं, जिनके माध्यम से उनके स्थितिकाल के निर्धारण में उपयोगी होंगे –

यद्यपि महाकवि कालिदास का जन्म–समय भी अनिश्चित है, तथापि उनका जन्म–समय ई0 पू0 प्रथम शताब्दी से चतुर्थ शताब्दी के बीच माना जाता है। महाकवि कालिदास अपनी वाट्यकृति 'विक्रमोर्वशीयम्' में स्पष्टतः भरत का उल्लेख करते हैं –

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीश्वश्टरसाश्रयों निबद्धः।

ललितभिनयं तमद्य भर्ता मरुतां द्रश्टुमनाः स लोकपालः।।

(विक्रमोर्वशीयम् 2/18)

इस बात की ओर संकेत मिलता है कि आचार्य भरतमुनि के स्थिति–काल की अपर सीमा चतुर्थ शताब्दी है0 हैं भरत इसके बाद के नहीं हो सकते। अतः ये कालिदास से पूर्ववर्ती हैं। प्रो0

ए0बी0 कीथ नाट्यशास्त्र को तृतीय शताब्दी ई0पू0 का नहीं मानते। इस सन्दर्भ में उन्होंने निम्न तर्क प्रस्तुत किये हैं –

(क) भास ने नाट्यशास्त्र का शब्दतः उल्लेख तो किया, किन्तु नाट्य लेखन में नाट्यशास्त्रीय मर्यादाओं को ध्यान में नहीं रखा। अतः स्पष्ट है कि भास तक नाट्यशास्त्र नाट्यलेखन का मानक नहीं बन सका था।

(ख) नाट्यशास्त्र में उल्लिखित प्राकृत अश्वघोष के बाद की है एवं भास प्राकृत प्रयोग नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रतीत होती है।

डॉ0 मनमोहन घोष ने नाट्यशास्त्र को 100 ई0 पू0 से 200 ई0 पू0 के मध्य की रचना माना है, जिसका आधार उन्होंने छन्दो विवेचन, अलकर चतुष्टय की कल्पना, भाषा–वैज्ञानिक विवेचन तथा उपाख्यानों एवं भौगोलिक विवरण को माना है।

नाट्यशास्त्रीय किं वा काव्यशास्त्रीय प्रतिमानों एवं कलाओं का विश्वकोष नाट्यशास्त्र विषय–विवेचन की दृष्टि से विपुलकाय ग्रन्थ है, जो भरतमुनि की प्रतिभा का एक मात्र परिणाम है। सम्प्रति नाट्यशास्त्र के दो संस्करण प्राप्त होते हैं – पहला काव्यमाला, मुम्बई का संस्करण तथा दूसरा काशी–संस्कृत–सीरीज का संस्करण। काव्यमाला वाले संस्करण में 37 अध्याय हैं, किन्तु काशी संस्कृत सीरीज वाले संस्करण 36 अध्यायों की चर्चा की गयी है। नाट्यशास्त्र को 'षट्–त्रिशंक' कहते हुए आचार्य गुप्त अभिनव ने भारती अभिनव में 37वें अध्याय की भी पृथक् रूप से टीका की है। दक्षिण में 36 एवं 37 दोनों ही अध्याय एक साथ 36वें अध्याय में प्राप्त होते हैं। अधिकांश विद्वान् 36 अध्याय ही स्वीकार करते हैं।

1.5 प्रतिपाद्य विषय

नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय–क्रम अध्यायानुक्रम में निम्नवत् है –

'नाट्योत्पत्ति' सञ्ज्ञ प्रथम अध्याय में नाट्य की उत्पत्ति का वर्णन है। इस अध्याय में नाटक के लक्षण का भी विवेचन किया गया है। 'मण्डपाध्याय' नामक द्वितीय अध्याय में प्रेक्षागृह या नाट्यशाला या नाट्यमण्डप (Auditorium Hall) की रचना का विधान बताया गया है। 'रङ्गदैवतपूजन' नामक तृतीय अध्याय देवताओं के पूजन, ग्रहों के पूजन, पितरों, गणों, गन्धर्वों, नागों, वास्तुदेवों तथा रङ्गपूजन को समर्पित है। 'ताण्डवलक्षण' अभिधानात्मक चतुथ अध्याय में ताण्डवनृत्य विषयक 108 करणों एवं अञ्हारों, मुद्रा, अङ्गसञ्चालन तथा रेचकों का वर्णन है। 'पूर्वरङ्गविधान' नामक पघचम अध्याय में पूर्व रङ्ग का स्वरूप, प्रत्याहार, अवतरण, नान्दीपाठ, विदूषक, सूत्रधार, प्रस्तावना, स्थापक आदि का वर्णन किया गया है। 'रसाध्याय' नामक षष्ठ अध्याय में रस का विस्तृत विवेचन, स्वरों के भेद ध्रुवा विधान आदि का निरूपण किया गया है। 'भाव–व्यघजकाख्य' सप्तम अध्याय में भावों के साथ–साथ विभाव, अनुभाव, स्थायीभाव, सञ्चारी भाव, सात्विक भाव आदि का स्वरूप विवेचन किया गया है। 'अड्.गाभिनयाध्याय' नामक अष्टम अध्याय में चतुर्विध अभिनयों– आङ्गिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक का वर्णन हैं 'उपाङ्गाभिनयाध्याय' नामक नवम अध्याय में हस्तसघचालन, पादसघचालन, कटि आदि के अभिनयों के साथ मुद्राओं के लक्षण तथा प्रयोगविधि पर प्रकाश डाला गया है। 'चारी अध्याय' नामक दशम अध्याय में चारी, करण, खण्ड एवं मण्डल के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। 'मण्डलविकलानम्' नामक एकादश अध्याय में दश प्रकार के भौम तथ्य दश प्रकार के आकाशीय मण्डल का वर्णन है। 'गतिप्रचाराध्याय' नामक द्वादशाध्याय में विविध प्रकार की गतियों एवं रङ्गभूमि–प्रवेश की विधि का प्रतिपादन है। 'कश्याप्रवृत्तिधर्मी' नामक त्रयोदश अध्याय में रङ्गभूमि के विधि–भागों का निरूपण है। चतुर्दश अध्याय में अभिनय में प्रवृत्त धर्म की व्यघजना, चार प्रवृत्तियाँ, पाञ्चाली, आवन्ती, दाक्षिणात्या एवं मागधी आदि का वर्णन है। पञ्चदश अध्याय में वाचिक अभिनय, स्वरों, व्यञ्जनों, सञ्ज्ञओं आदि का विवेचन है। 'छन्दोविधान' नामक षोडश अध्याय में छन्दःशास्त्रीय नियमों एवं काव्यगुण, दोष, अलङ्कर आदि का निरूपण किया गया है। सप्तदश अध्याय में विविध प्रकार की भाषाओं पर प्रकाश

डाला गया है। 'दशरूपकलक्षणाध्याय' नामक अष्टादश अध्याय में दश प्रकार के रूपकों का वर्णन किया गया है। उन्नीसवें अध्याया में इतिवृत्त के भेद, अर्थप्रकृति एवं कार्यावस्थाओं की चर्चा है। 'विंशति' अध्याय में आहार्य (वेष–भूषा) अभिनय का वर्णन किया गया है। द्वाविंशति अध्याय में सामान्य अभिनय एवं नायक–नायिका भेद का उल्लेख है। त्रयोविंशति अध्याय वेश्या एवं वैशिक को समर्पित है। चतुर्विंशति अध्याय में पात्र–भेद का प्रतिपादन है। 'चित्राभिनय' नामक पघचविंशति अध्याय में अंशदि अभिनय के विषय में चर्चा की गयी है। 'विकृतिविकल्पाध्याय' सघज्ञ षड्विंशति अध्याय में विकृत मुख वाले अभिनय का वर्णन है। 'सिद्धिव्यघजकाध्याय' नामक सप्तविंशति अध्याय में अभिनय की सिद्धियों तथा उनके निराकरण के प्रकारों का कथन किया गया है। अष्टाविंशति अध्याय में चार प्रकार के वाद्यों–तत, अवनद्ध, धन एवं सुषिर, आतोध विधियाँ, सप्तस्वर तथा स्वरों की जातियों का विवेचन किया गया है। एकोनत्रिशदध्याय में वाद्यप्रयोग, रसाश्रित जातियाँ, रसानुकूल स्वर प्रयोग, त्रिंशदध्याय में वंशगत स्वर एवं उनके प्रयोग, स्वरों के भेद–प्रभेद तथा उनके वाद्योचित प्रयोग का निरूपण है। एकत्रिंशदध्याय में ताल एवं उसके भेद–प्रभेद, हस्तागुलिविकल्प, कामतन्त्राभिनय, गीतों के लक्षण ध्रुवा का स्वरूप एवं उसका तालविधान, लयों के भेद का वर्णन किया गया है। द्वात्रिंशदध्याय में ध्रुवा के भेद एवं उसके इतर प्रभेद तथा जातियों का विवेचन है। त्रयास्त्रिंशदध्याय में सशीतशास्त्रका निरूपण है। चतुर्त्रिंशदध्याय में नायक भेदों एवं पात्र भेदों को निरूपित किया गया है। पघचत्रिंशदध्याय में सूत्रधार, पारिपार्श्विक विदूषक का वर्णन किया गया है। षड्त्रिंशदध्याय उपसंहारात्मक हैं प्रकृत अध्याय मे ंपृथ्वी पर नाटक के अवतरण सम्बन्धी प्रश्नों की चर्चा है।

उपलब्ध नाट्यशास्त्र (प्राचीन नाम नाट्यवेदागम, जिसमें बारह हजार श्लोक थे) में छः हजार श्लोक हैं तथा अन्तरङ्ग परीक्षा करने पर इसके तीन रूप हमारे सामने उद्घाटित होते हैं – सूत्र–भाष्त कारिका तथा अनुवंश्य श्लोक। उक्त विषय–विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है। कि भारतीय काव्यशास्त्र एवं कला का मेरुदण्ड नाट्यशास्त्र में काव्यशास्त्र के समस्त प्रतिमानों का निरूपण किया गया है। वस्तुतः नाट्यशास्त्रकों परवर्ती काव्यशास्त्र का उपजीव्य कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

1.6 प्रथम अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या

प्रणम्य शिरसा देवौ पितामहमहेश्वरौ।
नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि ब्रझणा यदुदाहृतम्।। 1 ।।

अर्थ – ब्रह्मा जी तथा महेश्वर शिव इन दो देवताओं को शिर से प्रणाम करके मैं नाट्यशास्त्र का वर्णन करूँगा, जिसको ब्रह्मा जी के द्वारा कहा गया था।

समाप्तजप्यं व्रतिनं स्वसुतैः परिवारितम्।
अनाध्याये कदाचित् तु भरतं नाट्योविदम्।। 2 ।।
मुनयः पर्युपास्यैनभात्रेयप्रमुखाः पुरा।
पप्रच्छुस्ते महात्मानो नियतेन्द्रियबुद्धयः।। 3 ।।

अर्थ – (पुराने समय में) कदाचित् अनाध्याय के दिन व्रत का आचरण करने वाले नाट्यशास्त्र के ज्ञाता भरतमुनि जप समाप्त करके, अपनें पुत्रो से घिरे हुए थे, तब इन्द्रियों तथा बुद्धियों को संयम में रखने वाले आत्रेयादि मुनियों ने भरत जी की उपासना करके उनसे पूछा –

विशेष – अनाध्याय – जिस दिन अध्ययन न हो, कोविद – ज्ञाता, पर्युपास्य – उपासना

योयं भगवता सम्यग् ग्रथितो वेदसंमितः।
नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य वा कृते।। 4 ।।
कत्यङ्ग किम्प्रमाणश्च प्रयोगश्चास्य कीदृशः।
सर्वमेतद्यथातथ्यं भगवन्वक्तुमर्हसि।। 5 ।।

अर्थ – हे ब्रह्मन् ! भगवान् आपके द्वारा यह जो वेदतुल्य नाट्यवेद भलीभांति रचा गया ग्रन्थ है, वह किस प्रकार एवं किसके लिए उत्पन्न हुआ है, यह कितने अङ्गों वाला है, इसका कितना प्रमाण है तथा इसका प्रयोग (अभिनय) किस प्रकार होता है। हे भगवान् ! यह सब बातें आपकों यथातथ्य (ठीक – ठीक) बतलानी चाहिए।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मुनीनां भरतो मुनिः ।

प्रत्युवाच ततो वाक्यं नाटप्रवेद कथां प्रति ।। 6।।

भवद्भिः शुचिभिर्भूत्वा तथाऽवहित मानसैः ।

श्रूयता नाटप्रवेदस्य संभवो ब्रझनिर्मितः ।। 7 ।।

अर्थ – मुनियों के उस वचन को सुनकर तदुपरान्त भरतमुनि नाट्यवेद की कथा कहने के लिए उत्तर में वाक्य बोल – "आपके द्वारा पवित्र एवं सावधान मनवाले होकर ब्रह्मा द्वारा निर्मित नाटप्रवेद के जन्म को सुनिये –

पूर्व कृतयुगे विप्रा वृत्त स्वायंभुवेऽन्तरे ।

त्रतायुगे संप्रवृत्ते मनोवंवस्वतस्य च ।। 8।।

ग्राम्यधर्में प्रवृत्ते तु कामलोभवशं गते ।

ईर्ष्याक्रोधादि संमूढ़े लोके सुदुःखिते ।। 9 ।।

अर्थ– हे ब्रह्मणों! पूर्वकाल में स्वायंभुव मन्वन्तर में सत्ययुग के समाप्त हो जाने पर तथा वेवस्वतमनु के मन्वन्तर के त्रेतायुग के आरम्भ हो जाने पर, जब काम–लोभ के वश होकर लो ग्राम्य धर्म में 'प्रवृत्त' हो गया, एवं ईर्ष्या लोभादि से संमूढ होकर सुख–दुख को प्राप्त हुआ।

संप्रवृत्ते – प्रारम्भ हो जाने पर, ग्राम्यधर्म – ग्रामीण आचरण – संमूढ – मोहित होकर –

देवदारवगंधर्वे रक्षोयक्ष – महोरगैः।

जम्बूद्वीपे समाक्रान्ते लोक पाल प्रतिष्ठिते ।। 10 ।।

महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्त; किल पितामहः।

क्रीडानीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं चयद्भवेत् ।। 11 ।।

नावेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।

तस्मात्सृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम् ।। 12 ।।

अर्थ – जब लोक पालो से प्रतिष्ठित जंबूद्वीप देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष तथा महासर्पों से समाक्रस्त हो, तब इन्द्रादि प्रमुख देवताओं नें पितामह ब्रह्मा जी से कहा हम ऐसा खेल चाहते हैं, जो देखने और सुनने दोनों के योग्य हो।

एवमस्त्विति तानुक्रत्वा देवगणं विसृज्य च ।

संस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित् ।। 13 ।।

अर्थ – 'ऐसा ही हो' उनसे ऐसा कहकर, देवराज इन्द्र को विदा करके तत्त्वज्ञ ब्रह्मा जी ने योग में स्थित होकर चारो वेदों को याद किया।

संस्मार – स्मरण किया, तत्त्ववित् – तत्त्व के ज्ञाता।

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं ससंग्रहम्।

भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् ।। 14 ।।

सर्वशास्त्रार्थ – संपन्नं सर्वशिल्पप्रवर्तकाम् ।

नाट्याख्यं पञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम् ।। 15।।

संकल्प्य भगवानेवं सर्वान्वेदाननुस्मरन्।

नाट्यवेदं ततशचक्रे चतुर्वेदाङ्ग संभवम्।। 16।।

अर्थ – जो धर्म, अर्थ की प्राप्ति कराने वाला, यश प्रदाता, उपदेश सहित, संग्रह युक्त भावी संसार के लिए सब कर्मों का अनुदर्शक, सब शास्त्रों के अर्थो से परिपूर्ण, सब शिल्पों को काम में प्रवृत्त करने वाला होगा, मैं ऐसे नाट्य नामक पांचवे वेद की रचना इतिहास सहित करता हूँ। भगवान् ब्रह्मा ने इस प्रकार संकल्प करके, सब वेदों का स्मरण करके नाट्यवेद की रचना की जिसकी उत्पत्ति चारों वेदों के अङ्गों (वेदाङ्गों) से हुई है।

जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामयो गीतमेव च।

यजुवेदादभिनयान्रसानाथर्वणादपि।। 17।।

वेदोपवेदैः संबद्धो नाट्यवेदो महात्मना।

एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्ववेदिना।। 18।।

अर्थ – (ब्रह्मा ने) पाठ्य सामग्री को ऋग्वेद से, गीत तत्व को सामवेद से, अभिनय यजुर्वेद से तथा रसों को अथर्ववेद से ग्रहण किया। इस प्रकार सर्ववेद ज्ञाता ब्रह्मा ने वेदों एवं उपवेदों से सम्बन्ध रखने वाले नाट्यवेद की रचना की।

उत्पाद्य नाट्यवेदं तु बह्मोवाच सुरेश्वरम्।

इतिहासों मया सृष्टः स सुरेषु नियुज्यताम् ।। 19 ।।

कुशला ये विदग्धाश्च प्रगल्भाश्च जितश्रमाः ।

तेष्वयं नाट्यसंज्ञो हि वेदः संक्राम्यतां त्वया ।। 20 ।।

अर्थ – नाट्यवेद को उत्पन्न करके बह्मा ने देवगण इन्द्र से कहा – "मेरे द्वारा इतिहास रच दिया गया, अब तुम्हारे द्वारा इसका नियोजन (अभिनय) देवताओं से कराया जाना चाहिए।" जो कार्यकुशल, पण्डित, वाक्पटु तथा थकान को जीतने वाले हो, उनको यह 'नाट्यवेद' तुम्हारे द्वारा संक्रान्त किया (अभिनय के लिए सौंपा) जाना चाहिए।

संक्राम्यतां – संक्रमित (सौंपा) करना, जितश्रमाः – थकावट को जीतने वाला।

तच्छुत्वा भगवान् शक्रो ब्रह्मा यदुदाहृतम् ।

प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रत्युवाच पितामहम् ।। 21 ।।

अर्थ – ब्रह्मा द्वारा जो कहा गया उसे सुनकर भगवान् इन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रणत होकर पितामह के प्रति यह वचन कहा।

ग्रहणे धारणे ज्ञाने चास्य सत्तम ।

अशक्ता भगवान् देवा अयोग्या नाट्यकर्मणि ।। 22 ।।

 अर्थ – हे श्रेष्ठ ब्रह्मा जी ! इस नाट्यवेद को ग्रहण करने में, धारण करने में, जानने में और

प्रयोग करने में देवता असमर्थ हैं और इस नाट्यकर्म में हे देव ! अयोग्य हैं।

य इम वेदगुह्याज्ञा ऋषयः संशितव्रताः।

एतेऽस्य ग्रहणे शक्ताः प्रयोगे धारणे तथा ।। 23 ।।

अर्थ – प्रशंसा योग्य व्रतों को करने वाले वेद के गोपनीय रहस्य को जानने वाले ऋषिगण ही इस (नाट्यवेद) को समझने, प्रयोग करने तथा धारण करने में समर्थ हैं।

गुह्यता – गोपनीय को जानने वाले, संश्रितव्रताः – व्रतों को करने वाले।

श्रुत्वातु शुक्रवचनं मामासम्बुजसंग्भवः।

त्वं पुत्रशतसंयुक्तः प्रयोक्तस्य भवानघः ।। 24 ।।

अर्थ – इन्द्र के वयन सुनकर (विष्णु के नाभि) कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने मुझसे (भरत) कहा – हे निष्पाप ! तुम अपने सौ पुत्रों सहित इसका प्रयोग (अभिनय) करो।

आज्ञापितो विदित्वाहं नाट्यवेदं पितामहात्।

पुत्रानध्यापयामास प्रयाग चापि तत्वतः।। 25।।

अर्थ – ब्रह्मा द्वारा आज्ञा दिये जाने पर मैने पितामह ब्रह्मा जी से नाट्यवेद को जानकर, उसके प्रयोग को ठीक प्रकार से जानकर अपने पुत्रों को पढ़ाया।

अध्यापयामास् – पढ़ाया।

ब्रह्मा के सौ पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं।

शाण्डिल्यं चैव वात्स्यं च कोहलं दत्तिलं तथा।

जटिलाम्बष्टकौ चैव तण्डुलमग्निशिखं तथा।। 26।।

सैंधवं सपुलोमानं शाद्बलिं विपुलं तथा।

कपिज्जलिं बादिरं च यमधूम्रायणौ तथा।। 27।।

जम्बुध्वजं काक जंघं स्वर्णकं तापसं तथा।

कैदारिं शालिकर्णं च दीर्घगात्रं च शालिकम्।। 28।।

कौत्सं ताण्डायनिं चैव पिङ्गलं चित्रकं तथा।

बन्धुलं भल्लकं चैव मुष्टिकं सैन्धवायनम्।। 29।।

तैतिलं भार्गवं चैव शुचिं बहुलमेव च।

अबुधं बुधसेनं च पाण्डु कर्णसुकेरलम्।। 30।।

ऋजुकं मण्डकं चैव शम्बरं वंजुलं तथा।

मागधं सरलं चैव कर्तारं चोग्रमेव च।। 31।।

तुषारं पार्षदं चैव गौतमं बादरायणम्।

बिषालं शबलं चैव सुनामं मेषमेव च।। 32।।

कालियं भ्रमरं चैव तथा पीठमुखं मुनिम्।

नखकुऊाश्मकुऊौ च षट्पदं सोत्तमं तथा।। 33।।

पादुकोपानहौ चैव क्षुतिं चाषस्वरं तथा।

अग्निकुण्डाज्यकुण्डौ च वितण्डयं ताण्ड्यमेव च।। 34।।

वार्तराक्षं हिरण्याक्षं कुशलं दुःसहं तथा।

लाजं भयानकं चैव वीभत्सं सविचक्षणम्।। 35।।

पुण्डकृाक्षं पुण्ड्रनासं च असितं सितमेव च।

विद्युज्जिह्वं महाजिह्वं शालङ्कायनमेव च।। 36।।

श्यामायनं माठरं च लोहिताङ्गं तथैव च।

संवर्तकं मरुाशिखं त्रिशिखं शिखमेष च ।। 37 ।।

शङ्खवर्णमुखं षण्डं शङ्कर्णमथापि च।

शक्रक्रेमि गभस्तिं चवंशुभालिं शठं तथा ।। 38 ।।

विद्युतं शातजङ्गं च रौद्रं वीरमथापि च।

पितामहाज्ञयास्माभिर्लोकस्य च गुणे प्सया।। 39 ।।

प्रयोजितं पुत्रशतं यथाभूमिविभागशः।

यो यस्मिन्र्मणि यथा योग्यस्तस्मिन् स योजितः ।। 40 ।।

अर्थ – शाण्डिल्य, वात्स्य, कोहल, दत्तिल, जटिल, अम्बष्ठ, तण्डु, अग्निशिख, सौन्धव, पुलोमन्, शाड्वलि, विपुल, कपिंजलि, बादिर, यम, धूम्रायण जम्बूध्वज, काकजङ्घ स्वर्णक, तापस, कैदारि, दीर्घमात्र, शालिक, कौत्स, ताण्डायनि, पिङ्गल, चित्रक, बहुल, अबुध, बुधसेन, पाण्डु कर्ण, केरल, ऋजुक, मण्डल, शम्बर, वञ्जुल, मागध, सम्ल, कर्ता उग्र, तुषार, पार्षद, गौतम, बादरायण, विशाल, शबल, सुनाभ, मेष, कालिय, भ्रमर, पीठमुख, मुनि, नखकुऊ, अश्मकुऊ, षट्पद, उत्तम, पादुक, उपानत, श्रुति, चाषस्वर, अग्निकुण्ड, आज्यकुण्ड, वितण्डय, ताण्डय, कर्तराक्ष, हिरण्याक्ष, कुशल, दुःसह, लाज, भयानक, वीभत्स, विचक्षण, पुण्ड्राक्ष, पुण्ड्रनास, असित, सित, विद्युज्जिह्व, महाजिह्व, शालङ्कायन, श्यामायन, माठर, लोहिताङ्ग, संवर्तक, पंचशिख, त्रिशिख, शिख, शंखवर्णमुख, षण्ड, शङ्कु कर्ण, शक्रनेमि, गभस्ति, अंशुमाली, शठ, विद्युत, शातजङ्क, रौद्र, वीर, – इन ब्रह्मा जी के सौ पुत्रों को लोक गुण की इच्छा से भूमि विभागानुसार कार्य में लगाया। जो जिस कार्य के योग्य था, उसे उसी में नियोजित किया।

भारतीं सात्वतीं चैव वृत्तिमारभटी तथा ।

समाश्रितः प्रयोगस्तु प्रयुक्तो वै मया द्विजाः ।। 41 ।।

अर्थ – हे द्विजो ! मैने भारती, सात्त्वती और आरभटी वृत्तियों पर भली भाँति आश्रित प्रयोग को ही प्रस्तुत करने का उपक्रम किया है।

परिगृहा प्रणम्याथ ब्रह्मा विज्ञापितो मया।

अथाह मां सुरगुरुः कैशिकीमपियोज।। 42 ।।

अर्थ – तत्पश्चात् समीप जाकर प्रणाम ब्रह्मा को मेरे द्वारा सूचित किया गया। तब ब्रह्मा ने मुझसे कहा कि कैशिकी वृत्ति को भी योजित कर लो।

परिग्रह्य – ग्रहण कर, समीप जाकर, योज्य – योजित करना।

यष्व तस्याः क्षमं द्रव्यं तद्ब्रूहि द्विजसत्तमः।

एवं तेनास्म्यभिहितः प्रप्रुक्तश्च मया प्रभुः ।। 43 ।।

अर्थ – हे द्विजश्रेष्ठ ! उस (कैशिकी) की योजना हेतु जो योग्य द्रव्य हो, बतलाओ। उनके द्वारा मुझसे इस प्रकार कहे जाने पर मैंने ब्रह्मा जी से कहा –

दीयतां भगवन् द्रव्यं कैशिक्याः संप्रप्रोजकम् ।

नृत्ताङ्गहार सम्पन्ना रसभावक्रियात्मिका ।। 44 ।।

द्रष्टा मया भगवतो नीलकण्ठस्य नृत्यतः ।

कैशिकी श्लक्ष्णनेपथ्या श्रंगाररससंभवा ।। 45 ।।

अर्थ – हे भगवन् आप (मुझको) व द्रव्य दीजिये जो कैशिकी वृत्ति के सम्यक् प्रयोग के लिए आवश्यक है, जो नृत्त के अंगकारों से सम्पन्न है, तथा रस, भाव, क्रिया जिसकी आत्मा है, जिसके लिए सुन्दर वस्त्रों की आवश्यकता होती है और श्रृंगाररस से जिसकी उत्पत्ति होती है, ऐसी वह कैशिकी वृत्ति भगवान् नीलकण्ठ के नृत्य के समय मेरे द्वारा देखी गयी थी।

अप्रहार – अप्र संचालन, श्लक्ष्णनैपथ्या – प्रयोग हेतु उचित

अशक्या पुरुषैः सातु प्रयोक्तुं स्त्रीजनादृते ।

ततोऽ सृजन् महातेजा मनसाप्सरसो विभुः ।। 46 ।।

व्याख्या – यह कैशिकी वृत्ति स्त्रियों के बिना पुरुषों द्वारा भली–भाँति प्रयुक्त नहीं की जा सकती। तब उस महान तेजस्वी ब्रह्मा जी ने स्वयं अपने मन से अप्सराओं की सृष्टि की।

विभुः – सर्वज्ञ, महातेजा – महातेजस्वी

नाट्यालङ्कार चतुराः प्रदान्मह्यं प्रयोगतः ।

मञ्जुकेशीं सुकेशीं च मिश्रकेशी सुलोचनाम्।। 47 ।।

सौदामिनी देवदत्तां देवसेनां मनोरमाम्।

सुदतीं सुन्दरीं चैव विदग्धां विपुलां तथा।। 48 ।।

सुमालां सन्ततिं चैव सुनन्दां सुमुखीं तथा।

मागधीमर्जुनीं चैव सरलां केरलां धृतिम्।। 49 ।।

नन्दां सुपुष्कलां चैव कलभां चैव मे ददौ।

स्वातिर्भाण्डनियुक्तस्तु सह शिष्यैः स्वयंभुवा।।

व्याख्या – ये अप्सरायें नाट्य के अलंकारों में चतुर थीं, ब्रह्मा ने अभिनय कार्य हेतु उनकों मुझे प्रदान किया। मज्जुकेशी, शुकेशी, मिश्रकेशी, सुलोचना, सौदामिनी, देवदत्ता, मनोरमा देवसेना सुदती सुन्दरी विदग्धा विपुला सुमाला सन्तति, सुनन्दा सुमुखी मागधी अर्जुनी सरला, केरला, धृति, नन्दा पुष्कला और कलभा नामक अप्सराओं को मुझे दिया। स्वयं ब्रह्मा जी के द्वारा स्वाति नामक भाण्ड (अपने शिष्य) वाद्ययंत्रों को बजाने हेतु नियुक्त किया गया।

नारदाद्याश्च गन्धर्वा गान योगे नियोजिताः। 150।।

एवं नाट्यमिदं साम्यग्बुद्धवा सर्वैः सुतैः सह ।। 51 ।।

स्वातिनारदसंयुक्तो वेदवेदाङ्ग कारणम्।

उपस्थितोऽहं लोकेशं प्रयोगार्थं कृताञ्जलिः।। 52 ।।

व्याख्या – नारदादि गन्धर्व गानयोग में नियोजित कर दिये गये। इस प्रकार सब पुत्रों के साथ इस नाट्य को भली–भाँति समझकर मैं स्वाति और नारद सहित वेद और वेदाङ्गों के कारण लोकेश्वर ब्रह्मा जी के पास हाथ जोड़कर इसके प्रयोग के लिए उपस्थित हुए।

लोकेश – लोक के स्वामी, प्रयोगार्हं – प्रयोग के योग्य

नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तं ब्रूहि कि करवाण्यहम्।

एतत्तु वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पितामहः।। 53 ।।

महानयं ध्वजमह; श्रीमान्महेन्द्रस्य प्रवर्तते।

अत्रेदानीमयं वेदो नाट्यसंज्ञः प्रयुज्यताम्।। 54 ।।

ततस्तस्मिन् ध्वजमहे निहता सुरदानवे।

प्रहृष्टामरसङ्कोर्णे महेन्द्र विजयोत्सवे।। 55 ।।

नान्दीकृता मया पूर्वमाशीर्वचनसंयुक्त।

अष्टाङ्गपदसंयुक्तक्त विचित्रा वेदनिर्मिता।। 56 ।।

तद्न्तेऽनुकृतिर्बद्धा यया दैत्याः सुरैर्जिता।। 57।।

व्याख्या – तब असुरों एवं दानवों के निहत होने पर मनाये जाने वाले उस ध्वजमहोत्सव में जो इन्द्र का विजयोत्सव था एवं अनंदित देवताओं से भरा हुआ था, मेरे द्वारा आशीर्वचन से युक्त नान्दी सर्वप्रथम की गई। वेदनिर्मित विचित्र, आठ अंगो वाली यह नान्दी थी। नान्दी में अन्त में जिस प्रकार दैत्य देवताओं द्वारा जीत लिये गये थे, उसका अनुसरण किया।

प्रहृष्ट – प्रसन्न होना, संकीर्णैः– भरा हुआ

संफेटविद्रवकृता छेद्य भेद्याहवात्मिका।

ततो ब्रह्मादयो देवा प्रयोग परितोषिताः।। 58।।

व्याख्या – यह अनुकरण तुमुलनाद पूर्या, युद्ध एवं पलायन से युक्त था और मारकाट तथा युद्ध करने के लिए आह्वान (चुनौती) वाला था। तब ब्रह्मादि देवता इस प्रयोग (अभिनय) से परितोषित हुए।

संघेट – युद्ध, छेध्यभेध्य – मारकाट

प्रददुर्हृष्टमनसः सर्वोकरणानि वै।

प्रीतस्तु प्रथमं शक्रो दत्तवान् स्वधजं शुभम् ।। 59 ।।

ब्रह्मा कुटिलकं चैव भृंगारं वरुणस्तथा।

सूर्यश्छत्रं शिवः सिद्धिं वायुर्व्यजनमेव च ।। 60 ।।

विष्णुः सिंहासनं चैव कुबेरो मुकुटं तथा।

श्राव्यत्वं प्रेक्षणीयस्य ददौ देवी सरस्वती ।। 61 ।।

शेषा देव गन्धर्वा यक्षराक्षस पन्नगाः।

तस्मिन्सदस्यतिप्रीतान् नानाजातिगुणाश्रयान् ।। 62 ।।

अंशांशैर्भावितान् भावान्रसान् रूपं बलं तथा।

प्रददुमत्सुतेभ्यश्च चित्रमाभरणं बहु ।। 63 ।।

अर्थ – (ब्रह्मादि देवताओं ने) प्रसन्न होकर हमको सब प्रकार के उपकरण दिय। प्रसन्न हुए इन्द्र ने सर्वप्रथम अपना शुभ ध्वज दिया, ब्रह्मा ने कुटिलक (टेढ़ा दण्ड), वरुण ने सोने की झारी, सूर्य ने छत्र, शिव ने सिद्धि, वायु ने व्यजन (पंखा), विष्णु ने सिंहासन, कुबेर ने मुकुट तथा देवी सरस्वती ने प्रेक्षणीय को श्राव्यत्व प्रदान किया। इसके अतिरिक्त उस सभा में जो शेष अन्य देवता, गन्धर्व, यक्ष राक्षस और पभग थे, उन्होंनें अति प्रसन्नता वश अपने–अपने अंशों से उत्पन्न किये हुए अनेकों जाति, और गुणोंवाले, भावों, रसों, रूप बल तथा बहुत से आभरणों को मेरे पुत्रों को प्रदान किया।

उपकरण – सामान, व्यजन – पंखा, श्राव्यत्व – सुने जाने का सौष्ठव, प्रेक्षणीय – नाटक के तमाशे, प्रददुः – दिया, बलि – भेट, कुटिल – टेढ़ा मेढ़ा दण्ड।

एवं प्रयोगे प्रप्ररब्धे दैत्यदानव नाशने।

अभवन् क्षुभिताः सर्वे दैत्या ये त. संगता ।। 64 ।।

विरूपाक्ष पुरोगांस्तु विघ्नानुत्साद्य तेऽब्रूवन्।

नेत्थमिचछामहे नाट्यमेतदागम्यतामिति ।। 65 ।।

व्याख्या – दैत्य – दानव के नाश करने संबंधी अभिनय के आरम्भ होने पर, वे सब दैत्य वहाँ आकर एकत्रित हो गये, क्षुभित हो गये। उन दैत्यों ने अपने मुखिया विरूपाक्ष को ऐसे बहुत से विघ्नों को उकसाकर कहा – हम इस नाटक को इस प्रकार नहीं चाहते – सबकों यहाँ से चले जाना चाहिए।

विरूपाक्ष पुरोगाः – विरुपाक्ष जिनका अग्रणी था। प्रोत्साव्य – उठाकर, प्रोत्साह्य – प्रोत्साहित करके, इष्यामहे – इच्छा करते हैं।

ततस्तैरसुरैः सार्द्धविघ्ना मायामुपाश्रिताः।

वाचश्चेष्टा स्मृतिं चैव स्तम्भयन्तिस्मनृत्यताम् ।। 66 ।।

एवं विध्वंसितं दृष्टा सूत्रधारस्य देवराट्।

कस्मात्प्रयोग वैषम्यमित्युक्त्वा ध्यानमाविशत् ।। 67 ।।

व्याख्या – तब मायाश्रित (छल) विघ्नों ने उन असुरों के साथ मिलकर नृत्य करते हुए, अभिनेताओं की वाणी, चेष्टा और स्मृति को स्तम्भित कर दिया। इस प्रकार अभिनय को विध्वंसित हुआ देखकर तथा रुत्रधार यह ह कर कि अभिनय में यह विघ्न किस कारण हुआ – इन्द्र (कारण जानने हेतु) ध्यानावस्थित हो गय।

विध्वंसितम् – विनष्ट (विनाश हुआ)

अथापश्यत्सदो विघ्नैः समन्तात्परिवारितम्।

सहेतरैः सूत्रधारं नष्टसंज्ञं जडीकृतम् ।। 68 ।।

अथोत्थय द्रुतं क्रोधाद् दिव्यं जग्राह स ध्वजम्।

सर्वरत्नोज्ज्वलतनुः किंचिदुद्धत्तलोचनः ।। 69 ।।

रङ्गपीठगतान्विघ्नानसुरांश्चैव देवराट्।

र्जरीकृतदेहांस्तान कराज्जजरेण सः।। 70 ।।

व्याख्या – तत्पश्चात् उसने सभा को सब ओर से विघ्नों से घिरा हुआ तथा अन्य के सूत्रधार को चेतनारहित ओर निष्चेष्ट देखा। तत्पश्चात् इन्द्र ने शीघ्रता पूर्वक उठकर क्रोध से उस दिव्यध्वज को ग्रहण किया। सब प्रकार के रत्नों से जिसका शरीर उज्जवल था, क्रोध से जिनके नेत्र ऊपर को चढ़े हुए थे, ऐसे उस इन्द्र ने उस जर्जरध्वज के साथ रंगपीठ पर पहुँचनेँ और विघ्नों और

असुरों को जर्जरित शरीर वाला कर दिया।

सर्वरत्नोज्वलतं – सब रत्नों से उज्जवल। जर्जजरीकृकृ – विध्वंसित कर दिया गया।

निह्तेषु तु सर्वेषु विध्नेषु सह दानवैः।

संप्रहृष्य ततो वाक्यमाहुः सर्वे दिवौकसः।। 71 ।।

अहोप्रहरणं दिव्यमिदमासादितं त्वया।

जार्ज्जरीकृकृसर्वाभा येनैते दानवाः कृतोः ।। 72 ।।

यस्मादनेन ते विध्नाः सासुरा जर्ज्जरीकृताः।

तस्माजजर्ज्जर एवेति नामतोऽयं भविष्यति ।। 73 ।।

व्याख्या – दानवों सहित सब विध्नों के मारे जाने पर सब देवताओं ने प्रसन्न होकर यह वचन कहे – हे भरत। आपने तो दिव्यास्त्र प्राप्त कर लिया जिसके द्वारा यह दानव सब अंगों में जर्जरित कर दिये गये क्योंकि इसके द्वारा असुरों समेत तुम्हारे सब विध्न जजैर कर दिये गये, इसलिए यह जर्जर नाम से ही विख्यात होगा।

संप्रहृष्य – प्रसन्न होकर

शेषाः ये चैव विध्नार्थमुपस्थास्यन्ति विध्नकाः।

दृष्टवैव जर्जरं तेऽपि गमिष्यन्त्येवमेव तु ।। 74 ।।

एवमेवास्त्विति ततः शक्रः प्रोवाच तान्सुरान्।

रक्षाभूतस्तु सर्वेषां भविष्यत्येष जर्जरः ।। 75 ।।

व्याख्या – शेष बचे हुए जो कोई विध्न भविष्य में विध्नकर्ता में उपस्थित होगे, वे भी इस जर्जर को देखते ही ऐसी ही अवस्था को प्राप्त हो जायेंगे। तब इन्द्र ने उन देवताओं से कहा कि ऐसा ही हो। वह जर्जर सब अभिनय करने वालों के लिए रक्षा रूप होगा।

प्रयोगे प्रस्तुते ह्यवं स्फीते शक्रमहे पुनः।

त्रासं सञ्जयन्तिस्म विध्नाः शेषास्तु नृत्यताम् ।। 76 ।।

दृष्टवा तेषां व्यवसितं दैत्यानां विध्नकारकम्।

उपस्थितोऽहं ब्रह्माणं सुतैः सर्वैः समन्वितः ।। 77 ।।

निश्चिता भगवन्विध्ना नाट्यस्यास्य विनाशने।

अतो रक्षाविधिं सम्यगाज्ञापय सुरेश्वर; ।। 78 ।।

विध्नकारकम् – विध्न करने वाले, रक्षाविधि – रक्षा के उपाय।

व्याख्या – इस प्रकार इन्द्र के सुसमृद्ध महोत्सव के अवसर पर नाट्याभिनय के पुनः प्रस्तुत किये जाने पर बचे हुए विध्नों ने अभिनय कर्ताओं के लिए त्रास उत्पन्न किया। उन दैत्यों के इस विध्नकारक उद्योग को देखकर मैं (भरत) अपने सब पुत्रों के सहित ब्रह्मा जी के समीप उपस्थित हुआ। हे भगवन्। विध्न इस नाट्य का विनाश करने हेतु निश्चित किये हुए हैं अतः हे सुरेश्वर ! इसकी रक्षाविधि का भलीभांति आदेश करें।

ततस्तु विश्वकर्माणमाह ब्रह्मा प्रयत्नतः।

कुरु लक्षणसम्पन्नं नाट्यवेश्म महामते ।। 79 ।।

ततोऽचिरेणकालेन विश्वकर्मा शुभं महत्।

सर्वलक्षणसम्पन्नं कृत्वा नाट्यगृहं तु सः ।। 80 ।।

प्रोक्तवान् द्रुहिणं नत्वा सभायां तु कृताञ्जलिः।

सज्जं नाट्यग्रहं देव तदवेक्षितुमर्हति ।। 81 ।।

व्याख्या – तब ब्रह्मा जी ने विश्वकर्मा से कह हे ! महान मतिवाले विश्वकर्मन् तुम (शुभ) लक्षणों से संपन्न नाट्यशाला को बनाओ। तब थोड़े ही समय में विश्वकर्मा ने शुभ, सब अच्छे लक्षणों से संपन्न महान नाट्यग्रह की रचना की और ब्रह्मा की सभा में जाकर हाथ जोड़कर कहा – हे देव ! सज्जित नाट्यगृह तैयार हो चुका है, आपको उसे देख लेना चाहिए।

नाट्यवेश्म– नाट्यगृह

ततः सह महेन्द्रेण सुरैः सर्वैश्च सेतरैः।

अगच्छत्त्वरितो द्रष्टुं द्रुहिणो नाट्यमण्डपम् ।। 82 ।।

दृष्ट्वा नाट्यगृहं ब्रह्मा प्राह सर्वान् सुराँस्ततः।

अंशभागैर्भवद्भिस्तु रक्ष्योऽहं नाट्यमण्डपम् ।। 83 ।।

व्याख्या – तत्पश्चात् महेन्द्र तथा अन्य देवताओं के साथ ब्रह्मा जी शीघ्रतापूर्वक नाट्यमण्डप को देखने के लिए गये। नाट्यगृह को देखकर ब्रह्मा ने सब देवताओं से कहा – अंश अंश करके इस नाट्यमण्डप की रक्षा आप लोगों द्वारा की जानी चाहिए।

रक्षणे मण्डपस्यास्य विनियुक्तक्तु चन्द्रमाः।

यथादिग्लोकपालाश्च विदिक्ष्वपि च मारुताः ।। 84 ।।

नेपथ्यभूमौ मित्रस्तु निक्षिप्तो वरुणोऽम्बरे।

वेदिकारक्षणे वह्निर्भाण्डे सवादिवौकसः ।। 85 ।।

वर्णाश्चत्वार एवास्य स्तम्भेषु विनियोजिताः।

आदित्याश्चैयं रुद्राश्च न्यस्ताः स्तम्भान्तरेषु च ।। 86 ।।

धारणेष्वथ भूतानि शालात्वप्सरसस्तथा।

सर्ववेश्मसु यक्षिण्यो महीपृष्ठे महोदधि ।। 87 ।।

धारणीषु, स्थिताः भूतः– धारणियों में भूत स्थित हुए।

व्याख्या – इस नाट्यगृह की रक्षा हेतु चन्द्रमा को विशेषतया नियुक्त किया। जो दिशा जिस लोकपाल का था वह नाट्यगृह की उसी दिशा की रक्षा हेतु नियुक्त किया गया और विदिशाओं में मरूतों की नियुक्ति की गयी। नेपथ्यभूमि में मित्र को रख दिया गया, अम्बर मे वरुण को, वेदिका की रक्षा में अग्नि तथा भाण्डों की रक्षा के लिए सब देवता नियुक्त कर दिये गये। चारो वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) इसके रुद्र स्तम्भों के मध्यवर्ती भागों में स्थापित कर दिये गये। धारणों तथा धारणियों में भूतों को, तथा शालाओं में अप्सराओं, सब गृहों में यक्षिणियों को एवं पृथ्वीतल पर महोदधि को नियुक्ति किया गया।

द्वारशाला नियुक्तस्तु कृतान्तः काल एव च।

स्थापितो द्वार पार्श्वेतु नागराजौ महाबलौ ।। 88 ।।

देहल्यां यमदण्डस्तु शूलं तस्योपरिस्थितम्।

द्वारपालौ स्थितौ चोभौ नियतिर्मृत्युरेव च ।। 89 ।।

पार्श्वे च रङ्गपीठस्य महेन्द्रः स्थितवान्स्वयम्।

स्थापिता मत्तवारण्यां विद्युत्दैत्यनिषूदिनी ।। 90 ।।

स्तम्भेषु मत्तवारण्याः स्थापिताः परिरक्षणे।

भूतयक्षपिशाचाश्य गुह्यकाश्च महाबलाः ।। 91 ।।

जर्जरं तु विनिक्षिप्तं वज्रं दैत्यनिवर्हणम्।

तत्पर्वसु विनिक्षिप्ताः सुरेन्द्राः ह्यमितौजसा ।। 92 ।।

व्याख्या – द्वारशाला में तो कृतान्त काल को ही नियुक्त किया गया तथा द्वार के पाश्वों में महाबलशाली दो नागराजो (अनन्त – वासुकि) को देहली पर यमदण्ड नियुक्त किया गया और उसके ऊपर शूल (त्रिशूल) स्थित हुआ। नियति और मृत्यु दोनों ही द्वारपाल के रूप में स्थित हुए। रश्पीठ के पार्श्व में स्वयं महेन्द्र स्थ्ति हुआ। मत्तवारणी के दैत्यों को नष्ट करने वाली बिजली स्थापित की गयी। मत्तवारिणी के स्तम्भों पर उनकी रक्षा हेतु महाबलशाली गुह्यक स्थापित किये गये। दैत्यों को मारने वाला वज्र जर्जर के ऊपर डाल दिया गया और उसके पर्वों पर अपरिमित शक्ति वाले श्रेष्ठ देवता स्थापित कर दिये गये।

देहल्याय महेन्द्रस्तु – देहली की रक्षा के लिए महेन्द्र को, निषूदनी – विनाश करने वाली, विक्षिप्तम् – डाल दिया गया, मत्तवारिणी – वराण्डा।

शिरः पर्वस्थितो ब्रह्मा द्वितीये शङ्करस्तथा।

तृतीये च स्थितो विष्णुश्चतुर्थे स्कन्द एव च ।। 93 ।।

पञ्चमे च महानागाः शेषवासुकितक्षकाः।

एवं विध्नविनाशाय स्थापिताः जर्जरे सुराः ।। 94 ।

व्याख्या – जर्जर के शिर पार्श्व में ब्रह्मा स्थित हुए, दूसरी में शिव, तीसरी में विष्णु, चौथी में स्कन्द, पाँचवी में शेष, वासुकि और तक्षक नाम महानाग स्थित हुए। इस प्रकार विध्नों का विनाश करने के लिए देवता जर्जर में स्थापित हुए।

शिरःपार्श्वे – शिर के पास, महाभागाः – बड़े भाग्यशाली, जर्जरेश्वराः – जर्जर के ईश्वर।

रङ्गपीठस्य मध्ये तु स्वयं ब्रह्माप्रतिष्ठितः।

इत्यर्थं रङ्गमध्ये तु क्रियते पुष्पमोक्षणम् ।। 95 ।।

पातालवासिनो ये च यक्षगुह्यकपन्नगाः।

अधस्ताद् रङ्गपीठस्य रक्षणे विनियोजिताः ।। 96 ।।

नायकं रक्षतीन्द्रस्तु नायिकां तु सरस्वती।

विदूषकमथोङ्करः शेषास्तु प्रकृतिर्हरः ।। 97।।

व्याख्या – रङ्गपीठ के मध्य में स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठित हुए। इसीलिये रङ्ग के मध्य भाग में पुष्पों को चढ़ाया जाता है। जो पाताल में निवास करने वाले यक्ष, गुह्यय और पत्रग है, वे रङ्गपीठ की रक्षा

के लिए विशेषरूप से उसके नीचे नियोजित कर दिये गये। इन्द्र तो नायक की रक्षा करता है, सरस्वती नायिका की। विदूषक की रक्षा ओङ्कार करता है तथा शेष सामान्य पात्र एवं पात्रियों की रक्षा शिव करते हैं।

यान्येताति नियुक्तानि दैवतानीह रक्षण।

एतेषामधिदेवास्तु भविष्यन्तीत्युवाच सः ।। 98 ।।

एतस्मिन्नन्तरे देवैः सर्वैरूक्तः पितामहः।

साम्ना तावदिमे विध्नाः स्थाव्यन्तां वचसा त्वया ।। 99 ।।

पूर्वं साम प्रयोक्तव्यं द्वितीयं दानमेवतु।

तयोरुपरि भेदस्तु ततो दण्डः प्रयुज्यते ।। 100 ।।

आधिदेव – अधिकारी देवता, प्रशस्यते – प्रशेसनीय माना जाना।

व्याख्या – यहाँ नाट्यगृह की रक्षा में जो देवता नियुक्त किये हैं, वे उन स्थानों के अधिदेव होंगे ऐसा उन्होंने कहा। इसी मध्य सब देवताओं द्वारा पितामह से यह बात कही गयी कि यह विध्न आपके द्वारा शान्त वाणी से रोके जायें। पहले साम का प्रयोग किया जाना चाहिए, दूसरे दान का, तदुपरान्त भेद का। दण्ड का प्रयोग इन तीनों के पश्चात् किया जाता है।

देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा विहनानुवाच ह।

कथं भवन्तो नाट्यस्य विनाशार्थमुपस्थिताः ।। 101 ।।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वाविरूपाक्षऽब्रवीद्वचः।

दैत्यैविध्नगणैः सार्हा सामपूर्वमिदं वचः ।। 102 ।।

योऽयं भगवता सृष्टो नाट्यवेदः सुरेच्छया।

प्रत्यादेशोऽयमस्माकं सुरार्थं भवताकृतः ।। 103 ।।

व्याख्या – देवताओं के वचन सुनकर ब्रह्मा जी ने विध्नों से कहा – आप क्यों नाटक का विनाश करने के लिए उपस्थित हुए हैं। ब्रह्मा जी के वचन सुनकर विरूपाक्ष ने दैत्य और विध्नों के समूह के साथ सामपूर्वक यह वचन कहे। – आप भगवान् ब्रह्मा द्वारा जो यह नाट्यवेद देवताओं की इच्छानुसार सर्वप्रथम रचा गया है, यह तो आपके द्वारा देवताओं के निमित्त हमारा निरादर ही किया गया है।

समुस्थिताः – उपस्थित हुए, दैत्यैर्विष्णुगणैः – दैत्य एवं विष्णु के गणों के साथ।

तन्नैतदेवं कर्त्तव्यं त्वया लोकपितामहः।

यथादेवास्तथा दैत्यास्त्क्तः पूर्वविनिर्गताः ।। 104 ।।

विरुपाक्षवचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।

अलं वो मन्युना दैत्या विषादस्त्यज्यतामयम् ।। 105 ।।

भवतां देवतानां च शुभाशुभविकल्पकः।

कर्मभावन्वयापेक्षी नाट्यवेदोमया कृतः ।। 106 ।।

व्याख्या – हे लोकों के पितामह, आपके द्वारा ऐसा नही किया जाना चाहिए, क्योंकि सर्गारम्भ में जिस प्रकार आप से देवता उत्पन्न हुए, उसी प्रकार दैत्य। विरुपाक्ष के वचन सुनकर ब्रह्मा यह वचन बोले – हे दैत्यों आपका कोप व्यर्थ है तथा आपके द्वारा यह विषाद त्याग दिया जाना चाहिए। मेरे द्वारा जो यह नाट्यवेद रचा है, यह आपके और देवताओं दोनों के शुभ और अशुभ को निर्धारित करने वाला तथा दोनों के कर्म और भावों के अनुगमन की अपेक्षा करने वाला है।

विनिर्गता– निकले हुए, मन्युना – क्रोध से, विवादं त्यज्यताम् – विवाद को छोड़ दीजिये, विकल्पकः– विविध कल्पना, क्लीब – नपुंसक, धाष्ट्य – धैर्य।

नैकान्ततोऽत्रभवतां देवानां चापि भावनम्।

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।। 107 ।।

क्वचिद्धर्मः कचित्क्रीडा कचिदर्थः कचिच्छमः।

कचिद्हास्यं कचिद्युद्धं कचित्कामः कचिद्वधः ।। 108 ।।

धर्मोधर्मप्रवृत्तानांकामः कामार्थ सेविनाम्।

निग्रहो दुर्विनीतानां मत्तानां दमनक्रिया ।। 109 ।।

क्लीबानां धाष्टर्यजननमुत्साहः शूरमानिनाम्।

अबोधनां विवोधश्च वैदग्धं विदुषामपि ।। 110 ।।

व्याख्या – वहाँ (नाटक में) न तो केवल आप दैत्य लोगों का भावन (अनुकरण) हुआ है और न देवताओं का ही, प्रत्युत नाट्य तो इस समग्र त्रैलोक्य के भावों का अनुकीर्तन अथवा अनुकरण है। (नाट्य में) कहीं धर्म है, कहीं क्रीड़ा है, कही अर्थ है, कही क्षम है। कही हँसी है तो कहीं युद्ध, कहीं काम है तो कहीं वध है। धर्म के प्रवृत्त होने वालों का धर्म इसमें है तथा काम और अर्थ का सेवन करने वालों का काम भी इसी में है। दुर्विनीतों का निग्रह तथा मतों को दमन करने की क्रिया भी इसमें है। नपुंसकों 'मे' वह धाष्ट्य उत्पन्न करने वाला है और वीरमानियों को उत्साह देने वाला है। यह अबोधों को विशेष बोध देने वाला है और वैदग्धों को भी वैदुष्य देने वाला है।

क्वचिद्द्वन्दः– कहीं झगड़ा, शमः– शान्ति, धृति – धैर्य।

ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं दुःखार्दितस्य च।

अर्थोपजीविनामथ धृतिरुद्विग्नचेतसाम् ।। 111 ।।

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।

लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम् ।। 112 ।।

व्याख्या – यह ईश्वरों का विलास है, जो दुःख से पीड़ित है, उनके चित्र को स्थिरता देने वाला है अर्थ पर आश्रितों का यह अर्थ है, उद्विग्न चित वालों को धैर्य बँधाने वाला है। इस प्रकार नाना प्रकार के भावों से सुसम्पन्न, नाना प्रकार के अवस्थान्तरों से युक्त, लोकवृत्त का अनुकरण करने वाला, मैने नाट्य को बनाया है।

लोक वृत्तानुकरणं – लोक कथा का अनुकरण करने वाला।

उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्।

हितोपदेश जननं धृतिक्रीडासुखादिकृत् ।। 113 ।।

व्याख्या – यह नाट्य उत्तम, मध्यम, नीच प्रकार के मनुष्यों के कर्म पर आश्रित है, हितकारक उपदेश को जन्म देने वाला और धैर्यक्रीडा एवं सुखादि उत्पन्न करने वाला है।

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।

विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मयाकृतम् ।। 114 ।।

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम्।

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति ।। 115 ।।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

न स योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते ।। 116 ।।

व्याख्या – मेरे द्वारा रचा गया यह नाट्य दुःख से पीड़ित, थके हुए, शोक संतप्त, बेचारें लोगों के लिए समय पर विश्राम देने वाला है। यह नाट्यधर्म, यश और आयु का करने वाला हितकारी बुद्धि को बढ़ाने वाला तथा लोक को उपदेश को जन्म देने वाला है। अध्ययन द्वारा प्राप्त किया कोई ऐसा ज्ञान नहीं है, शिल्प नही है, विधा नही है, कला नहीं है, जो इस नाट्य में नहीं दृष्टिगोचर होता है।

विवर्धनम् – बढ़ानेवाला, श्रमार्तानाम् – परिश्रम के कारण थके हुए।

तन्नात्र मन्युः कर्त्तव्यो भवद्भिरमरान्प्रति।

येनानुकरणं नाट्यमेतत्तद्यन्मयाकृतम् ।। 117 ।।

देवानामसुराणाम् च राज्ञामथ कुटुम्बिनाम्।

ब्रह्मर्षीणां न विज्ञेयं नाट्यं वृत्तान्तदर्शनम् ।। 118 ।।

व्याख्या – अतः आप इस विषय में देवताओं के प्रति क्रोध न कीजिए। क्योंकि मेरे द्वारा किया गया नाट्य अनुकरण रूप है। नाट्य को देवताओं असुरों राजाओं, कुटुम्बिजनों तथा ब्रह्मर्षियों के वृतान्त को प्रदर्शित करने वाला जानना चाहिए।

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःख समन्वितः।

सोऽङ्गद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ।। 119 ।।

वेदविद्यतिहासानामाख्यान परिकल्पनम्।

विनोदकरणं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति ।। 120 ।।

एतस्मिन्नन्तरे देवान्सर्वानाह पितामहः।

क्रियतामद्य यजनं विधिवन्नाट्यमण्डपे।। 121।।

व्याख्या – यह जो लोक स्वभाव दुःख सुख से युक्त है, वहीं अशें आदि के अभिनय द्वारा युक्त होने पर 'नाट्य' कहा जाता है। वेदों, विधाओं और इतिहासों की परिकल्पना करने वाला तथा नाट्य संसार में विनोद को करने वाला होगा। इतना करने के पश्चात् ब्रह्मा जी ने सब देवों से कहा – आज नाट्य मण्डप में विधिपूर्वक यज्ञ किया जाना चाहिए।

बलिप्रदानैर्होमैश्च मन्त्रोषधिसमन्वितैः।

भोज्यैर्भक्ष्यैश्च पानैश्च बलिः, समुपकल्प्यताम् ।। 122 ।।

मर्त्यलोकेद्यऽप्ययं वेदः शुभां पूजामवाप्स्यति।

अपूजयित्वा रङ्गं तु नैव प्रेक्षां प्रवर्तते ।। 123 ।।

अपूजयित्व रङ्गं तु यः प्रेक्षा कल्पयिष्यति।

तस्य तन्निष्फलं ज्ञानं तिर्यग्योनिं च यास्यति ।। 124 ।।

व्याख्या – वह (यज्ञ) बलि प्रदानों, मंत्रों तथा औषधि से युक्त हवनों द्वारा किया जाना चाहिये और भेंट की रचना, भोज्य, भक्ष्य तथा पीने योग्य पदार्थो से होनी चाहिए। यह (नाट्य) वेद मर्त्यलोक में भी शुभ पूजा को प्राप्त करेगा। रङ्ग की पूजा किये बिना खेल की योजना करेगा, वह (नाट्य की) उसका ज्ञान निष्फल होगा और वह पशुयोनि को प्राप्त होगा।

यज्ञेन संमितं ह्येतद्रङ्ग दैवतपूजनम्।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं नाट्ययोक्तृभिः ।। 125 ।।

नर्तकोऽथपतिर्वापि यः पूजां न करिष्यति।

न कारयिष्यत्यन्यैर्वा प्राप्स्यत्यपचमं तु सः ।। 126 ।।

यथाविधि यथादृष्टं यस्तु पूजां करिष्यति।

स लप्स्यते शुभानर्थान्स्वर्गलोकं च यास्यति ।। 127 ।।

व्याख्या – यह रङ्गदैवत पूजन यज्ञ के बराबर महत्व वाला है। अतएव नाटक की योजना करनेवालों के द्वारा इसको सब प्रयत्न पूर्वक किया जाना चाहिए। चाहे नर्तक, चाहे नाटक को संरक्षण प्रदान करने वाला धनवान् व्यक्ति जो भी रश की पूजा नहीं करेगा अथवा दूसरो से नहीं करायेगा, वह अवनति को प्राप्त होगा। जो विधि और दर्शनानुसार पूजा करेगा, वह शुभ अर्थो को प्राप्त करेगा और स्वर्गलोक को जायेगा।

अपचर्य – अवनति, संमितं – माना हुआ, रङ्ग पूजनम् – रंग की पूजा।

एवमुक्तक्ता तु भगवान्द्रुहिणः सह देवतैः।

रङ्ग पूजां कुरुष्वेति मामेवं समचोदयत् ।। 128 ।।

व्याख्या – भगवान् ब्रह्मा जी ने ऐसा कहकर देवताओं के साथ मुझे (भरत) को यह प्रेरित किया कि (तू) रङ्ग की पूजा कर।

इकाई– 02 द्वितीय अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 द्वितीय अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या

2.3.1 नाट्यगृह के प्रकार

2.3.2 मनुष्यों के लिए निर्मित प्रेक्षागृह का स्वरूप

2.3.3 भित्ति तथा स्तम्भों का निमार्ण

2.4 सम्भावित समीक्षात्मक प्रश्न

2.5 उपयोगी पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थियों को नाट्यशाला निर्माण के सम्बन्ध में समस्त जानकारी प्राप्त हो सकेगी। नाट्यगृह के प्रकार, भित्ति तथा स्तम्भों का निर्माण, रंगशाला निर्माण आदि के शुभ नक्षत्रों मन्त्रों आदि का ज्ञान कराना इस इकाई का उद्देश्य है।

2.2 प्रस्तावना

प्रथम अध्याय के अध्ययन के पश्चात् इस अध्याय में नाट्य के प्रांरभ में आधारभूत नाट्यगृह या नाट्यशाला के विषय में अध्ययन करेंगे। कोई नाट्य कर्म करने से पूर्व सर्वप्रथम प्रश्न आता है कि नाट्क कहाँ मंचित होगा। किस प्रकार की नाट्यशाला की आवश्यकता होगी अतः नाट्यगृह के निर्माण में सावधानी एवं विशिष्ट विधि–विधान आवश्यक है। आचार्य भरत ने द्वितीय अध्याय में नाट्यशाला के लक्षणों एवं भेदों का विस्तृत विवेचना किया है। नाट्यमण्डप का निर्माण नियमानुसार विधि–विधानपूर्वक ही किया जाना चाहिए।

2.3 द्वितीय अध्याय की कारिकाओं की व्याख्या

भरतस्य वचः श्रुत्वा पप्रच्छुर्मुनयस्ततः।

भगवन् श्रोतुमिच्छामो यजनं रङ्ग संश्रयम्।। 1 ।।

अथ वा याः क्रियास्तत्र लक्षणं यच्च पूजनम्।

भविष्यद्भिर्नरैः कार्यं कथं तन्नाट्यवेश्वनि।। 2 ।।

व्याख्या – भरतमुनि के वचनों को सुनकर पुनः मुनिगण बोले – भगवन्! हम रंग मंच पर होने वाले पूजनादि का विधान सुनना चाहते है। अथवा उस रंगपीठ की भविष्य में मनुष्यों द्वारा किस प्रकार रचना की जाये तथ इसके लक्षण, आकार, परिणाम तथा अधिकारी देवताओं का पूजन विधान क्या होगा ? इसे भी बतलायें।

इहादिनाट्यप्रयोगस्य नाट्यमण्डप एव हि।

तस्मात्तस्यैव तावत्त्वं लक्षणं वक्तुमर्हति।। 3 ।।

व्याख्या – क्योंकि नाट्य का प्रारम्भिक तत्व रंगमंच है – अतएव आप सर्वप्रथम नाट्यगृह के लक्षण ही बतलाने की कृपा करें।

2.3.1 नाट्यगृह के प्रकार

तेषांतु वचनं श्रुत्वा मुनीनां भरतोऽब्रवीत।

लक्षणं पूजनं चैव श्रूयतां भाट्यवेश्मनः।। 4 ।।

व्याख्या – मुनिगण की बात सुनकर भरत मुनि बाले – पहले आप नाट्यगृह का लक्षण एवं पूजन विधान सुनियें।

दिव्यानां मानसी सृष्टिर्गृहेषूपवनेषु च।

यथाभावाभिनिर्वर्त्याः सर्वे भावास्तु मानुषाः।। 5 ।।

नराणां यत्नतः कार्या लक्षणाभिहिता क्रिया।

श्रूयतां तद्यथा यत्र कर्त्तव्यो नाट्यमण्डपः।। 6 ।।

तस्य वास्तु च पूजा च तथा योज्या प्रयत्नतः।

इह प्रेक्षागृहं दृष्टवा धीमता विश्वकर्मणा।। 7 ।।

त्रिविधः सन्निवेशश्च शास्त्रतः परिकल्पितः।

विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रष्चैव तु मण्डपः।

तेषां त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथाऽवरम्।। 8 ।।

व्याख्या – देवताओं को गृह तथा उपवन निर्माण में मानसी शक्ति प्राप्त है, अतः उनके लिए निर्माण विधि आवश्यक नही है किन्तु मनुष्यों के लिए तो सभी शास्त्र के नियमों से युक्त होकर ही सम्पन्न होने वाले कार्य हुआ करते है। अब आप नाट्यगृह के स्थान, उसका निर्माण, प्रकार तथा पूजन विधान को, जो कि प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए, सुनिये। बुद्धिमान् विश्वकर्मा ने नाट्यगृह के विषय में विचार कर, उसके शास्त्रानुसार तीन प्रकार बतलायें हैं – (1) विकृष्ट (2) चतुरस्त्र, (3) त्र्यस्र। इनके माप तीन प्रकार के होते हैं – ज्येष्ठ, मध्य और अवर।

प्रमाणमेषां निर्दिष्टं हस्तदण्डसमाश्रयम्।

शतं चाष्टौ चतुःषष्टिर्हस्ता द्वात्रिंशदेव च ।। 9 ।।

अष्टाधिकं शतं ज्येष्ठं चतुःषष्टिस्तु मध्यमम्।

कनीयस्तु तथा वेश्म हस्ता द्वात्रिंशदिष्यते।। 10 ।।

देवानां तु भवेज्ज्येष्ठं नृपाणां मध्यमं मवेत्।

शेषाणां प्रकृतीनां तु कनोय; संविधीयते।। 11 ।।

(प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां प्रशस्तं मध्यं स्मृतम्।

तत्र पाठ्यं च गेयं च सुखश्राव्यन्तरं भवेत्।। 12 ।।

प्रेक्षा गृहाणां सर्वेषां त्रिप्रकारो विधिः स्मृतः।

विकृष्टश्चतुस्रश्च त्र्यस्रश्चैव प्रयोक्तृभिः।।)

व्याख्या – इन नाट्यगृहों का परिमाप हाथ तथा दण्ड के आधार पर निश्चित किया जाता है। इनके माप है। एक सौ आठ, चौसठ तथा बत्तीस हाथ की एक भुजा। एक सौ आठ हाथ वाला प्रेक्षागृह ज्येष्ठ, चौसठ हाथ वाला मध्य, तथा बत्तीस हाथ वाला कनिष्ठ होता है। देवताओं का नाट्यगृह ज्येष्ठ, राजाओं का मध्यम, तथा शेष सामान्य प्रजाजन के लिए अवर नाट्यगृह का संविधान किया जाना चाहिए। इन सभी प्रेक्षागृहों में मध्यम परिमाण का प्रेक्षागृह प्रशस्त होता है क्योंकि उसमें पाठ्य तथा गीत को सुख पूर्वक सुना जा सकता है। इस प्रकार प्रेक्षागृहों के विकृष्ठ, चतुस्त्र, तथा त्र्यस्त्र – तीन प्रकार बताये गये हैं।

व्याख्या – त्र्यस्त्र सबसे छोटा तथा चतुस्त्र मध्यम आकार वाला होता है तथा नाट्यवेद के विज्ञाता एवं प्रयोक्ताजन विकृष्ट को सबसे बड़े आकार वाला समझें।

प्रमाणं यश्च निर्दिष्टं लक्षणं विश्वकर्मणा।

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तच्चैव हि निबोधत।। 12 ।।

अणूरजश्च बालश्चलिक्षा यूका यवस्तथा।

अंगुलश्च तथा हस्तो दण्डश्चैव प्रकीर्तितः।। 13 ।।

अणवोऽष्टौ रजः प्रोक्तं तान्यष्टौ बाल उच्यते।

बालास्त्वष्टौ भवेल्लिक्षा यूका लिक्षाष्टकं भवेत्।। 14 ।।

यूकास्त्वष्टौ यवो ज्ञेयो यवास्त्वष्टौ यथाङ्गुलम्।

अङ्गुलानि तथा हस्तश्चतुर्विंशतिरुच्यते।। 15 ।।

चतुर्हस्तो भवेद्दण्डो निर्दिष्टस्तु प्रमाणतः।

अनेनैव प्रमाणेन वक्ष्याम्येषां विनिर्णयम्।। 16 ।।

व्याख्या– विश्वकर्मा ने प्रेक्षागृहों के जो लक्षण तथा प्रमाण निर्दिष्ट किये हैं – उन्हें भी आप जानिये। अणु, रज, बाल, लीख (जूं) जौ, अंगुली हस्त तथा दण्ड– ये नौ नाप के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए परिमाण है। आठ अणुओं का एक रज होता है। आठ रजों का एक बाल, आठ बालों की एक लीख, तथा आठ लीखों की एक जूं होती है। आठ जूं से एक जौ तथा आठ जौ का एक अंगुल होता है। चौबीस अंगुल का एक हाथ तथा चार हाथ का एक दण्ड होता है इसी प्रमाण–विधि के अनुसार अब मैं प्रेक्षागृहों के आकार का निश्चय करता है।

2.3.2 मनुष्यों के लिए निर्मित प्रेक्षागृह का स्वरूप

चतुः षष्टिकरान्कुर्याद्दीघत्वेन तु मण्डपम्।

द्वात्रिंशेत तु विस्तारं मर्त्यानां यो भवेदिह।। 17।।

व्याख्या – इस पृथ्वी पर मनुष्यों के लिए जो नाट्यगृह निर्माण किया जाये उसकी लम्बाई 64 हाथ तथा चौड़ाई 32 हाथ रखनी चाहिए।

अत ऊर्ध्वं न कर्त्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डमः।

यस्मादव्यक्तभावं हि तत्र नाट्यं व्रजेदिति।। 18 ।।

व्याख्या – निर्मातागण इससे बड़ा नाट्यगृह निर्माण न करें क्योंकि प्रेक्षागृहों के अधिक विस्तीर्ण

होने पर उनमें उच्चरित किया जाने वाला नाट्याभिनय अस्पष्ट होने लगेगा।

मण्डपे विप्रकृष्टे तु पाठ्यमुच्चारितस्वरम्।

अनिस्सरणधर्मत्वाद्विस्वरत्वं भृशं व्रजेत्।। 19।।

यश्चाप्यास्यगतो भावो नानादृष्टिसमन्वितः।

सवेश्मनः प्रकृष्टत्वाद् व्रजेदव्यक्ततां पराम्।। 20 ।।

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तस्मान्मध्यमिष्यते।

यस्मात्पाठ्ययञ्च गेयञ्च तत्र श्रव्यतरं भवेत्।। 21 ।।

व्याख्या – (प्रेक्षागृह के लम्बे होने पर) कथोपकथन तथा गीतों के वर्णो के ठीक तरह से उच्चारण न होने से अतिशय बेसुरापन हो जायेगा और अभिनेताओं के मुखों पर स्थित नाना दृष्टियों से समन्वित भाव भी अस्पष्ट हो जायेंगे। अतएव सभी प्रेक्षागृहों में मध्यम परिमाण वाला प्रेक्षागृह ही ठीक है जिनमें संवाद वाद्य तथा गीत सुखपूर्वक सुना जा सके।

(प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां त्रिप्रकारो विधिः स्मृत : ।।

विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव प्रयोक्तृभि : ।।

कनीयस्तु स्मृतं त्र्यस्रं चतुरस्रं च मध्यम् ।।

ज्येष्ठं विकृष्टं विज्ञेयं नाट्यवेश्मप्रयाक्तृभि : ।।

देवानां मानसी सृष्टिर्गृहेषूपवनेषू च।

चलभावाभिनिष्पन्नाः सर्वे भावाहि मानुषाः।। 22 ।।

तस्माद्देवकृतैभावैर्न विस्पर्धेत मानुषः।

व्याख्या – गृहों तथा उपवन की देवताओं द्वारा मानसी सृष्टि की जाती है किंतु मनुष्यों द्वारा सब रचनाओं को प्रयत्नपूर्वक निर्माण करना होगा। अतएव मनुष्य को देवताओं की रचना शक्ति से विशेष स्पर्धा नहीं करनी चाहिए।

विस्पर्धेत – स्पर्धा न करना।

मानुषस्य तु गेहस्य सम्प्रवक्ष्यामि लक्षणम्।। 23।।

भूर्मेविभागं पूर्वन्तु परीक्षेत प्रयोजकः।। ।।

ततो वास्तुप्रमाणेन प्रारभेत शुभेच्छया।। 24 ।।

समा स्थिरा तु कठिना कृष्णा गौरी च या भवेत्।। ।।

भूमिस्तत्रैव कर्त्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः।। 25 ।।

प्रथमं शोधनं कृत्वा लाङ्गलेन समुत्कृषेत्।। ।।

अस्थिकीलकपालानि तृणगुल्मांश्च शोधयेत्।। 26 ।।

शोधयित्वा वसुमतीं प्रमाणं निर्दिशेत्ततः।।

व्याख्या – मनुष्यों के प्रेक्षागृहों का अब मैं लक्षण कहता हूँ। नाट्यगृह निर्माण करने वाले को सर्वप्रथम पृथ्वी के भाग की परीक्षा करनी चाहिये। वास्तुशास्त्र के प्रमाणानुसार शुभभावना से युक्त हो कार्य प्रारम्भ करें। जो भूमि समतल स्थिर, कड़ी हो एवं जिसका रंग काला या गौर वर्ण हो,

उसी भूमि पर निर्मातागण नाट्यमण्डप का निर्माण करवायें। सर्व प्रथम उस भूमि का शोधन करें, फिर उस पर हल चलवाकर, जुतवा दें और उसमें स्थित हड्डी, कीलें, खपड़े, घास, तथा झाड़ियों को भी साफ कर दें। इस प्रकार भूमि का शोधन कर फिर प्रमाण का निर्देश करें। लाङ्गलेन हल के द्वारा, षोधयेत् – शुद्ध करना चाहिये।

(त्रीण्युत्तराणि सौम्यरु विशाखापि च रेवती।

हस्ततिष्यानुराधाश्च प्रशस्ता नाट्यकर्मभिः।।)

पुष्यनक्षत्रयोगेन शुक्तं सूत्रं प्रसारयेत् ।। 27 ।।

व्याख्या – नाट्यगृह के निर्माता में 'शुभ नक्षत्र' हैं – तीन उत्तरा शब्द, युक्त नक्षत्र, मृगशिरा, विशाखा, रेवती हस्त तिष्य तथा अनुराधा। पुष्य नक्षत्र में श्वेत वर्ण के सूत्र को विस्तीर्ण करें।

कर्पासं वाल्वजं वापि मौञ्जं वात्कलमेव च।

सूत्रं बुधैस्तु कर्त्तव्यं यस्यच्छेदो न विद्यते।। 28।।

अर्धच्छिन्ने भवेत्सूत्रे स्वामिनो मरणं ध्रुवम्।

त्रिभागच्छिन्नया रज्ज्वा राष्ट्रकोपो विधीयते।। 29 ।।

छिन्नायां तु चतुर्भागे प्रयोक्तुर्नाश उच्यते।

हस्तात्प्रभ्रष्टया वापि कश्चित्त्वपचयो भवेत्।। 30 ।।

तस्मान्नित्यं प्रयत्नेन रज्जुग्रहणमिष्यते।

कार्यं चैव प्रयत्नेन मानं नाट्यगृहस्य तु।। 31 ।।

मुहूर्तेनानुकूलेन तिथ्या सुकरणेन च।।

ब्राह्मणास्तर्पयित्वा तु पुण्याहं वाचमेत्ततः।। 32 ।।

शान्तितोयं ततो दत्त्वा ततः सूत्रं प्रसारयेत्।।

व्याख्या – यह सूत्र (डोरी) कपास, ऊन, मूंज या किसी वृक्ष की छाल से निर्मित होना चाहिए। बुद्धिमान पुरूषों द्वारा डोरी को ऐसी बनानी चाहिए, जिससे कि वह टमटने न पाये। क्योंकि डोरी के टूटने पर नाट्यगृह के निर्माता या राज्य के स्वामी की निश्चित मृत्यु हो जाती है। यदि रस्सी तिहाई भाग से टूट जाये तो राष्ट्रविप्लव होता है। चौथे भाग से टूट जाने पर प्रयोक्ता का (प्रबन्धक) नाश कहा गया है। यदि यह डोरी (भूमिमापन के समय) हाथ से खिसक कर टूट या गिर जाये, तो भी कोई न कोई हानि अवश्य होती है। अतएव रस्सी को बड़ी सावधानी से ग्रहण करना चाहिए। अतः रज्जु से माप प्रयत्नपूर्वक की जानी चाहिए। इसके लिए मुहूर्त और तिथि अनुकूल होना चाहिए और करण भी शुभ होना चहिये, तत्पशचात् ब्राह्मणों को तृप्त कर पुण्याहवाचन करवायें। तदुपरान्त शान्ति का जल छोड़ते हुए सूत्र को धारण करें और उसे फैलाये।

चतुष्पष्टिकरान्कृत्वा द्विधा कुर्यात्पुनश्चतान्।। 33।।

पृष्ठतो यो भवेद्भागो द्विधोभूतस्य तस्य तु।।

तस्यार्धेन विभागेन रङ्गशीर्षं प्रकल्पयेत्।। 34 ।।

पश्चिमे च विभागेऽथ नेपश्यगृहमादिशेत्।

विभज्य भागान्विधिवद्यथावदनु पूर्वशः।। 35 ।।

व्याख्या – (विकृष्ट तथा मध्यम–प्रेक्षागृह की रचना के लिए) चौसठ हाथ (लंबी) भूमि को नाम कर

उसे दो भागों में विभक्त करें। इनमे जो पीछे का आधा भाग है, उसे दो भागों में पुनः बाँट कर उसके आगे (भाग) में रंगपीठ तथा रंगशीर्ष का निर्माण करें तथा पिछले आधे भाग पर 'नेपथ्य गृह' को बनवाना चाहिए। सबसे पिछला वाला भाग नेपथ्यगृह एवं उसके आगे वाला भाग रङ्गशीर्ष कहलाता है।

प्रकल्पयेत् – निर्माण करना।

शुभ नक्षत्रयोगे च मण्डपस्य निवेशनम्।।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्मृदङ्गपणवादिभिः।। 36 ।।
सर्वातोद्यैः प्रणुदितैः स्थापनं कार्यमेव तु।
उत्सार्याणि त्वनिष्टानि पाषण्ड्माश्रमिणस्तथा।। 37।।
काषायवसनाश्चैव विकलाश्चैव ये नराः।

व्याख्या – इस प्रकार कथित विधि के अनुसार भूमि के भागों को यथावत् विभाजन कर शुभ नक्षत्र तथा योग में शंख दुन्दुमि आदि मंगल वाद्यों के नाद घोष के साथ तथा मृदंग, पणव आदि बाजों को वृन्दवादन सहित बजवाते हुए नाट्य मण्डप की आधारशिला स्थापित करनी चाहिए। इस मंगलमय उत्सव के अवसर पर अनिष्टकारी जो भी हो, उन्हें तथा पाषण्ड, संन्यासी, कषायवस्रधारी तथा विकलांग मनुष्यों को भी इस स्थान से हटा देना चाहिए।

निशायांच बलिः कार्यो नानाभोजनसंयुतः।। 38 ।।

गन्ध पुष्पफलोपेतो दिशो दश समाश्रितः।

पूर्वेण शुक्लान्नयुतो नीलान्नो दक्षिणेन च।। 39 ।।

पश्चिमेन बलिः पीतो रक्तश्चैवोत्तरेण तु।

यादृशं दिशि यस्यान्तु दैवतं परिकल्पितम्।। 40।।

तादृशस्तत्र दातव्यो बलिर्मन्त्र पुरस्कृतः।

व्याख्या – रात्रि में अनेक प्रकार के भोजनों से युक्त गन्ध, पुष्प, फलों से समन्वित दशों दिशाओं में बलि देना चाहिए। पूर्व दिशा में शुक्ल अन्न की, दक्षिण में नीले, पश्चिम में पीले तथा उत्तर लाल अन्न की बलि देनी चाहिए। जिस दिशा का जो देवता अधिदेव के रूप में बतलाया गया है, उस दिशा में वैसी ही मन्त्रों के सहित बलि प्रदान करना चाहिए।

स्थापने ब्राह्मणेभ्यश्च दातव्यो घृतपायसम्।। 41 ।।

मधुपर्कस्तथा राज्ञे कर्तृभ्यश्च गुडौदनम्।

नक्षत्रेण तु कर्त्तव्यं मूलेन स्थापनं बुधैः।। 42 ।।

मुहूर्त्तेनानुकूलेन तिथ्या सुकरणेन च।।

व्याख्या – गृह स्थापना के समय ब्राह्मणों को घृतयुक्त पायस (खीर) को मधुपर्क तथा कार्य करने वाले व्यक्तियों की गुड़ धानी दी जानी चाहिए। बुद्धिमान् जन इस मण्डप की स्थापना मूल नक्षत्र में, अनुकूल मुहूर्त तिथि तथा शुभ करण में करें।

पायसम् – खीर

2.2.3 भित्ति तथा स्तम्भों का निर्माण

एवन्तु स्थापनं कृत्वा भित्तिकर्मप्रयोजयेत्।। 43 ।।

भित्तिकर्मणि निवृत्ते स्तम्भानां स्थापनं ततः।।

तिथिनक्षत्रयोगेन शुभेन करणेन च।। 44 ।।

स्तम्भानां स्थापनं कार्यं रोहिण्या श्रवणेन च।।

आचार्येण सुयुक्तेन त्रिरात्रोपोषितेन च।। 45 ।।

स्तम्भानां स्थापनं कार्यं प्राप्ते सुर्योदये शुभे।

व्याख्या – इन स्तम्भों की स्थापना शुभ नक्षत्र, योग तथा करण में की जाने चाहिए। इनकी स्थापना के समय रोहिणी या श्रवण होना चाहिए। एकाग्रचित नाट्याचार्य तीन दिन उपवास रखने के पश्चात् सूर्योदय की शुभ बेला में स्तम्भों की स्थापना विधि सम्पन्न करें।

प्रथमे ब्राह्मणस्तम्भे सर्पिस्सर्षपसंस्कृतः।। 46 ।।

सर्वशुक्लो विधिः कार्यो दद्यात् पायसमेव च।।

ततश्च क्षत्रियस्तम्भे वस्त्रमाल्यानुलेपनम्।। 47 ।।

सर्वं रक्तं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च गुडौदनम्।।

वैश्यस्तम्भे विधिः कार्यो दिग्भागे पश्चिमोत्तरे।। 48 ।।

सर्वं पीतं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च धृतौदनम्।

शुद स्तर्म्भ विधिः करर्यः सम्यक पूर्वोत्तराश्रये ।। 49 ।।

नीलप्रायं प्रयत्नेन कृसरं च द्विजाशनम् ।

पूर्वोक्तब्राह्मणस्तम्भे शुक्लामाल्यानुलेपने ।। 50 ।।

निक्षिपेत्कनकं मूले कर्णाभरणसंश्रयम् ।

ताम्रं चाद्यः प्रदातव्यं स्तम्भेक्षत्रियसंज्ञके ।। 51।।

वैश्यस्तम्भस्य मुले तु रजतं सम्प्रदापयेत् ।

शूद्रस्तमभस्य मूले तु दधादायसमेव च ।। 52 ।।

सर्वेष्वेव तु निक्षेप्यं स्तम्भमलेषु काञ्चनम् ।

व्याख्या – पहले ब्राह्मण स्तम्भ के नीचे – जो सफेद वस्त्र पुष्प तथा चन्दन से युक्त हैं – कान के आभूषण के लिए र्प्याप्त सोना डाला जाये। क्षत्रिय स्तम्भ के नीचे तांबा तथा वैश्य स्तम्भ के नीचे चाँदी डालना चाहिए। शूद्र स्तम्भ के मूल में लोहा तथा शेष स्तम्भों के मूल में सोना डालना चाहिए।

स्वस्ति पुण्याहघोषेण जयशब्देन चैव हि।। 53 ।।

स्तम्भानां स्थापनं कार्यं पुष्पमालापुरस्कृतम्।।

रत्नदानै संगोदानैर्वस्त्रदानैरनल्पकैः।। 54 ।।

ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा तु स्तम्भानुत्थापयेत्ततः।।

अचलं चाटयकम्पश्च तथैवावलितं पुनः।। 55 ।।

स्तम्भस्योत्थापने सम्यग्दोषा ह्येते प्रकीर्तितः।

अवृष्टिसूक्ता चलते वलने मृत्युयो भयम्।। 56 ।।

व्याख्या – स्तम्भों का स्थापन स्वस्ति वाचन तथा पुण्याह वाचन के घोष के साथ करना चाहिये–

जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए। स्थापन किये जाने वाले स्तम्भ को पुष्पमाला से सजाना चाहिए। ब्राह्मणों को रत्नदान, गोदान, वस्त्रदान से संतुष्ट करने के पश्चात् स्तम्भों को उठाये। इन स्तम्भों को इस प्रकार उठाए कि ये न चले, न कम्पित हो, न झुके, न मुड़े क्योंकि स्तम्भों को उठाने के समय ऐसा होना अनिष्टकारी होने के कारण दोष माना जाता है। यदि स्तम्भ चलायमान हो तो अदृष्टि, मुड़ जाने पर मृत्युभय हो जाता है।

बलन – मुड़ा हुआ, आवलितं – मोड़कर

कम्पने परचक्रात्तु भयं भवति दारुणम्।

दोषैरेतैर्विहीनं तु स्तम्भमुत्थापयेच्छिवम् ।। 57 ।।

पवित्रे ब्राह्मणस्तम्भे दातव्या दक्षिणा च गौः।

शेषाणां भोजनं कार्यं स्थापने कर्तृसंन्द्रयम्।। 58 ।।

व्याख्या – स्तम्भ के कम्पित होने पर शत्रुओं से दारुणभय उपस्थित हो जाता है। इन दोषों को बचाते हुए स्तम्भ को उठाना चाहिए। पवित्र ब्राह्मण स्तम्भ की स्थापना के समय गो की दक्षिणा दी जाये तथा अवशिष्ट स्तम्भों की स्थापना के समय शेष कर्मकारों को भोजन कराना चाहिये।

मन्त्रपूतश्च तद्देयं नाट्यचार्येण धीमता।

पुरोहितं नृपरु भाजयेन्यधुपायसैः।। 59 ।।

कर्तृनपि तथा सर्वान् कृसरां लवणोत्तराम्।

सर्वमेवं विधिं कृत्वा सर्वातोद्यैः प्रवादितैः।। 60 ।।

अभिमन्त्र्य यथान्यायं स्तम्भानुत्थापयेच्छुचिः।

यथाञ्चलो गिरिर्मेरुर्हिमवांश्च महाबलः।। 61 ।।

जयावहो नरेन्द्रस्य तथा त्वमचलो भव।।

व्याख्या – मन्त्रोच्चार सहित यह भोजन बुद्धिमान नाट्याचार्य द्वारा करवाया जाना चाहिए। इस भोजन में पुरोहित तथा राजा को मधुयुक्त खीर तथा अन्य कार्यकर्ताओं को नमक युक्त खिचड़ी का भोजन करवाना चाहिए। सभी विधि – विधानों को सम्पन्न कर, सभी वाद्यों को बजवाते हुए, पवित्र होकर अभिमन्त्रित करे – जैसे सुमेरु पर्वत स्थिर है और हिमालय महा बलवान है। हे स्तम्भ ! तू भी इसी प्रकार अचल होकर राजा को विजय देने वाला बन।

स्तम्भद्वारञ्च भितिञ्च नेपथ्यगृहमेव च।

एवमुत्थापयेत्तज्ज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा।। 62।।

रङ्ग पीठस्य पार्श्वे तु कर्त्तव्या मत्तवारणी।

चतुःस्तम्भसमायुक्ता रङ्गपीठप्रमाणतः।। 63 ।।

अध्यर्धहस्तोत्सेधेन कर्त्तव्या मत्तवारणी,

उत्सेधेन तयोस्तुल्यं कर्त्तव्यं रङ्गमण्डपम्।। 64 ।।

तस्यां माल्यञ्च धूपञ्च गन्धं वस्त्रन्तथव च।

नानावर्णानि देयानि तथा भूतप्रियो बलिः।। 65 ।।

आयसं तत्र दातव्यं स्तम्भानां कुशलैरधः।

भोजने कृसराश्चैव दातव्यं ब्रह्मणाशनम्।। 66।।

व्याख्या – नाट्यगृहनिर्माण के विधानज्ञ पुरुशों द्वारा इसी प्रकार विधि विधानानुसार स्तम्भ, द्वार, भित्तियों तथा नेपथ्यगृह को उठाना चाहिये। रङ्गपीठ के दोनों ओर रंगपीठ के माप के बराबर चार स्तम्भों से युक्तमत्तवारणी (बराण्डा) की रचना की जावे जिसकी ऊँचाई डेढ़ हाथ रखी जाये और इन दोनों मत्रवारणियों के बराबर रंगपीठ ऊँचाई रहे। मत्रवारिणी के निर्माण के अवसर पर भूतों के इष्ट पदार्थों की बलि तथा अनेक वर्णों के पुष्प मालाओं, अनेकविध धूप और सुगन्धित पदार्थ अर्पण करना चाहिए। दक्ष शिल्पीजन इसके स्थापित किये जाने वाले खम्भों के मूल में लोहा रख दें और ब्राह्मणों को खिचड़ी का भोजन प्रदान करें।

एवं विधिपुरस्कारैः कर्त्तव्या मत्तवारणी।। 67 ।।

रङ्गपीठ ततः कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा।

रङ्गशीर्षस्तु कर्त्तव्यं षड्दारुकसमन्वितम्।। 68 ।।

कार्यं द्वारद्वयञ्चात्र नेपथ्यग्रहकस्य तु।

पूरणे मृत्तिका चात्र कृष्णा देया प्रयत्नतः।। 69 ।।

लाङ्गलेन सगुत्कृष्य निर्लोष्टतृणशर्करम्।

लाङ्गते शुद्धवर्णौ तु धुर्यौ योज्यौ प्रयत्नतः।। 70 ।।

कर्तारः पुरुषाश्चात्र येऽङ्गदोषविवर्जिताः।

अहीनाङ्गञ्च वोढव्या मृत्तिका पीवरर्नवैः।। 71 ।।

एवं विधं प्रकर्त्तव्यं रङ्ग शीर्षं प्रयत्नतः।।

व्याख्या – इस प्रकार विधिवत देवताओं को वस्त्रादि प्रदान करते हुए मत्तवारणी का निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् विधानुसार रङ्गपीठ का निर्माण किया जायें। इस रंगशीर्ष को षड्दारुक से युक्त करते हुए बनाया जाये। इसके नेपथ्य गृह में दो दरवाजे रखने चाहिए। इस रंग शीर्ष को भरने के लिए हल से जोतकर ढेलों, घास तथा कंकड़ों से रहित की हुई, काली प्रयत्नपूर्वक मिट्टी डालनी चाहिये। हल में श्वेतवर्ण के हल बैल जोतने चाहिये और इस हल को जोतने वाले मनुष्य अंगहीन नहीं होने चाहिये। यह मिट्टी तथा बलवान मनुष्यों के द्वारा ढोई जानी चाहिये जो विकलांग न हों। इस प्रकार विधि पूर्वक रङ्ग शीर्ष का निर्माण किया जायें।

वोढव्या – ढोना, निलोष्ट – ढेले से रहित, मृत्तिका – मिट्टी

कूर्मपृष्टं न कर्त्तव्यं मत्स्यपृष्ठं तथैव च।। 72।।

शुद्धदर्शतलाकारं रङ्गशीर्ष प्रशस्यते।।

रत्नानि चात्र देयानि पूर्वे वज्रं विचक्षणैः।। 73 ।।

वैदूर्यं दक्षिणे पार्श्वे स्फटिकं पश्चिमे तथा।

प्रबालामुत्तरे चैव मध्ये तु कनकं भवेत्।। 74 ।।

एवं रङ्गशिरः कृत्वा दारुकर्म प्रयोजयेत्।

व्याख्या – यह रङ्गशीर्ष न तो कछुए की पीठ के समान और न मछली की पीठ के समान ही बनाना चाहिये। शुद्ध दर्पण के समान समतल धरातल वाला रंगशीर्ष ही श्रेष्ठ समझाा जाता है और चतुर शिल्पीजन के द्वारा इनमें रत्नों को रखना चाहिये। पूर्व की ओर हीरा, दक्षिण में वैदूर्य, पश्चिम में स्फटिक तथा उत्तर में प्रवाल को लगाना चाहिये। इसके मध्य में सोना रखना चाहिये। इसी प्रकार रङ्गशीर्ष का निर्माण कर लेने पर फिर लकड़ी का कार्य आरम्भ करवाना चाहिये।

ऊहप्रत्यूहसंयुक्तं नानाशिल्पप्रयोजितम्।। 75

नानासञ्जवनोपेतं बहुव्यालोपशोभितम्।

ससालभाँजिकाभिश्च समन्तात्समलंकृतम्।। 76 ।।

निर्व्यूहकुहरोपेतं नानाग्रथितवेदिकम्।।

नानाविन्याससंयुक्तं चित्रजालगवाक्षकम।। 77 ।।

सुपीठधारणी युक्तं कपोतालीसमाकुलम्।

नानाकुट्टिम विन्यस्तैः स्तम्भैश्चाप्युपशोभितम्।। 78।।

एवं काष्ट विधिं कृत्वा भित्रिकर्म प्रयोजयेत् ।

व्याख्या – लकड़ी का कार्य बहुत सोच विचार तथा निरीक्षण करते हुये किया जाये। इसमें विविध प्रकार की कारीगरी रहनी चाहिये। इसमें अनेक तख्तों का जो भित्ति के समान दिखाई दे प्रयोग किया जाना चाहिये। अनेक हाथी की आकृतियों इनमें खुदवायी जायें। इनमें सुन्दर पुतलियाँ खुदवाई जायें। इसकी वेदिकाओं के नानाविध चित्र बाहर निकले हुए और भीतर खुदे हुए रहना चाहिए। इनकी रख्ना अनेक शैलियों से युक्त रहनी चाहिये। और इनकी जालियाँ और झरोखे एक विचित्र सजावट से युक्त होना चाहिये। इनमें विद्यमान खम्भों के ऊपर सुन्दर तुलायें लगायी जायें, जिनमें विचित्र स्वरूपवाली कबूतरों छतरियों पंक्तिबद्ध दिखाई दें तथा फर्श पर स्थित खम्भों पर अनेक तरह की चित्रकारी रहनी चाहिये। जब लकड़ी का कार्य और सजावट पूरी हो जाये, तो फिर दिवारों को उठाने का कार्य प्रारम्भ किया जाये।

गवाक्ष – खिड़की, भित्ति – दिवार, मञ्जिका – पुत्तलियाँ, भित्तिलेपं – दिवार पर लिपाई।

स्तम्भं वा नागदन्तं वा वातायनमथापि वा।। 79 ।।

कोणं व सप्रतिद्वारं द्वारविद्धं कारयेत।।

कार्यः शैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाट्यमण्डप;।। 80 ।।

मन्दवातायनोपेतो निर्वातो धीरशब्दवान्।

तस्मान्निवातः कर्त्तव्यः कर्तृभिर्नाप्यमण्डपः।। 81 ।।

गंभीरस्वरता येन कुतपस्य भवेदिति।।

भित्तिकर्मविधिं कृत्वा भित्तिलेपं प्रदापयेत।। 82 ।।

सुधाकर्म बहिस्तस्य विधातव्यं प्रयत्नतः।।

व्याख्या – दीवारों को उठाने के अवसर पर कोई खम्भा, खूँटी, झरोखा या खिड़की अथवा कोना किसी दरवाजे के सामने न आने पावे अथवा दरवाजे के सामने दूसरा दरवाजा न रखा जाये। यह नाट्यमण्डप पर्वत की गुफा के समान आकार लिये हुए और द्विभूमि (दुमंजिला) बनाया जाये। इसमें खिड़की या झरोखे से मन्द–मन्द हवा आनी चाहिये, यह तेज हवा से रहित और गम्भीर शब्दों को गुँजाने वाला होना चाहिए। शिल्पीजन इसको निर्वात बनाये क्योंकि ऐसे मण्डप में सभी प्रकार के वाद्यों की ध्वनि में स्वरगत गाम्भीर्य बना रहता है। भित्तियों को उठाने के बाद इन पर चूने से लेप चढ़ाया जाये तथा इसके बाहरी भाग पर ध्यानपूर्वक चूने की पुताई की जाये।

सुधाकर्म – सफेदी, चूने का काम, गुहाकारों – गुफा के समान आकार।

भित्तिंवथ विलिप्तासु, परिमृष्टासु सर्वतः।। 83 ।।

समसु जातशोभासु चित्रकर्म प्रयोजयेत्।।

चित्रकर्मणि चालेख्याः पुरुषाः स्त्रीजनास्तथा।। 84 ।।

लताबन्धाश्च कर्त्तव्याश्चरितञ्जात्मभोगजम्।

व्याख्या – दीवारों पर पलस्टर हो जाने तथा घिसाई घुटाई आदि हो जाने से चिकनी और समतल हो जाने के बाद इन भित्तियों पर चित्र–रचना करवानी चाहिये। चित्रों में लताबन्ध तथा अवलास क्रिडाओं वाले स्त्री पुरुषों के कार्य प्रदर्शित करने वाले चिह्न होना चाहिए।

भोगजम् – चिह्न, आकार, परिमृष्टासु – घिसाई होना।

एवं विकृष्टं कर्त्तव्यं नाट्यवेश्म प्रयोक्तृभिः।। 85 ।।

पुनरेव हि वक्ष्यामि चतुरस्रस्य लक्षणम्।

समन्ततश्च कर्त्तव्या हस्ता द्वात्रिंशदेव हि।। 86 ।।

शुभभूमिविभागस्थो नाट्यज्ञैर्नाट्यमण्डपः।

व्याख्या – विकृष्ट (आयताकार) नाट्यगृह की इसी प्रकार प्रयोक्ताजन रचना करे। अब में 'चतुरस्र' नाट्यगृह का लक्षण बताता हूँ – नाट्यज्ञाता पुरुषों के द्वारा शुद्ध युद्धभूमि पर विभाग पूर्वक अवस्थित चतुरस्र नाट्यगृह चारौ ओर 32 हाथ प्रमाण का बनाया जाना चाहिये।

यो विधिः पूर्वमुक्तस्तु लक्षणं मङ्गलानि च।। 87 ।।

विकृष्टे तान्यशेषाणि चतुस्रऽपि कारयेत्।

चतुरस्रं समं कृत्वा सूत्रेण प्रविभज्य च।। 88 ।।

बाह्यतः सर्वतः कार्या भित्तिः श्लिष्टेष्टका दृढ़ा।।

व्याख्या – विकृष्ट नाट्यगृह के विषय में जो विधियाँ लक्षण तथा मांगलिक विधि विधान बताये गये हैं, वे सभी चतुरस्र नाट्यगृह में किये जायें। चतुरस्र नाट्यगृह के क्षेत्र का समान विभाग कर तथा उसे सूत से नापते हुए उसके बाहरी भाग से सटी हुई ईंटों की दृढ़ दीवार उठा दी जाये।

ईष्टका – ईंटें

तत्राभ्यन्तरतः कार्या रङ्गपीठपरि स्थिताः।। 89 ।।

दश प्रयोक्तृभिः स्तम्भाः शस्ताः मण्डपधारणे।

स्तम्भानां वाह्यतश्यापि सोपानाकृकृतपीठकम्।। 90 ।।

इष्टका दारूभिः कार्यं प्रेक्षकाणां निवेशनम्।।

व्याख्या – रङ्गपीठ में भीतर की ओर दिशा के विचारानुसार निर्मातागण दस स्तम्भों को खड़ा करें जो इस मण्डप के बैठने के लिये ईंटों तथा लकड़ियों द्वारा सीढ़ियों के आकार में पीठक (आसन) बनाना चाहिये।

हस्तप्रमाणैरुत्सेधैर्भूमिभाग समुत्थितैः।। 91 ।।

रङ्गपीठावलोक्यञ्च कुर्यादासजं विधिम्।

व्याख्या – धरातल से एक हाथ ऊपर उठती सीढ़ियों जैसी दर्शकों के लिए बैठकें बनवायी जायें जहाँ से र"पीठ भलीभाँति दिखलायी दे।

षडन्यान्तर चैव पुनः स्तम्भान्यथादिशम्।। 92 ।।

विधिना स्थापयेत्तज्ज्ञो दृढान्मण्डपधारणे।

अष्टौ स्तम्भन्पुनश्चैव तेषामुपरि कल्पयेत्।। 93 ।।

स्थाप्य चैव ततः पीठमष्टहस्तप्रमाणतः।

विद्धास्यमष्टस्हस्तं च पीठ तेषुतता न्यसेत्।। 94 ।।

व्याख्या – तत्पश्चात् विज्ञाता शिल्पी उचित दिशाओं में अन्तर देते हुए मण्डप को धारण करने में समर्थ छः स्तम्भों को लगावें। इसके बाद इनके ऊपर आठ स्तम्भें रखें। इनके ऊपर विधे हुए मुँह वाले आठ हाथों के शहतीरों को रखा जाये और इन शहतीरों के मुँह दूसरे में लगे हुए हों।

न्यसेत – लगा होना।

तत्र स्तम्भाः प्रदातव्यास्तज्ज्ञैर्मण्डपधारणे।। 95 ।।

धारणीधारणास्ते च शालस्त्रीभिरलङ्कृताः।

नेपथ्यगृहकञ्चैव ततः कार्यं प्रयत्नतः।

द्वारञ्चैकं भवेत्तत्र रंगपीठ प्रवेशने।। 96 ।।

व्याख्या – विज्ञशिल्पीजन इसकी छत को धारण करने के लिए और शहतीर को सम्भालने के लिए खड़े किये जाने वाले दृढ़ खम्भों को काष्ठ पुतलियों आदि से अलंकृत करते हुए लगावें। पुनश्च नेपथ्य की प्रयत्नपूर्वक रचना की जाये। इसमें रंगपीठ पर खुलने वाले एक जैसे द्वार रखने चाहिये।

धारणी – छत, धारणा – धारण करना।

जन प्रवेशनं चान्यदाभिमुख्येन कारयेत्।

रहस्याभिमुखं कार्यं द्वितीयं द्वारमेव तु।। 97 ।।

व्याख्या – रंगमंच के समक्ष में प्रेक्षकों के प्रवेशार्य एक द्वार बनवाना चाहिए और नटों के प्रवेशार्थ निर्मित द्वार का रंगमंच के सम्मुख मुँह रखना चाहिए।

अष्टहस्तं तु कर्त्तव्यं रंगपीठं प्रमाणतः।

चतुरस्रं समतलं वेदिकासमलङ्कृतम्।। 98 ।।

पूर्वप्रमाण निर्दिष्टा कर्त्तव्या मत्तवारणी।

चतुःस्तम्भसमायुक्ता वेदिकायास्तु पार्श्वतः।। 99 ।।

व्याख्या – चतुरस्र नाट्यगृह का आठ हाथ का चौकोन समतल ओर वेदिका से युक्त रंगपीठ के प्रमाणानुसार सुन्दर रूप में बनाया जाये। वेदिका की बाजुओं में पूर्व निर्दिष्ट प्रमाण तथा विधि के अनुसार चार खम्भों से युक्त मत्तवारणी का निर्माण किया जाये।

समुन्नतं समं चैव रंगशीर्षं तु कारयेत्।

विकृष्टे तून्नतं कार्यं चतुरस्रे समं तथा।। 100 ।।

एवमेतेन विधिना चतुरस्रं गृहं भवेत्।

अतः परं प्रवक्ष्यामि त्र्यस्रगेहस्य लक्षणम्।। 101 ।।

व्याख्या – रंगपीठ की अपेक्षा ऊँचा और समतल दो प्रकार का रंगशीर्ष बनाया जाता है। विकृष्ट में वेदिका से ऊँचा तथा चतुरस्र में समान एवं समतल रंगशीर्ष बनाया जाये। चतुरस्र नाट्यगृह की यही विधि है। अब मैं त्र्यस्र नाट्यगृह का लक्षण बतलाता हूँ।

त्र्यस्र नाट्यगृह का लक्षण –

त्र्यस्रं त्रिकोणं कर्त्तव्यं नाट्यवेश्यप्रयोक्तृभिः।

मध्ये त्रिकोणमेवास्य रंगपीठं तु कारयत्।। 102 ।।

द्वारं तेनैव कोणेन कर्त्तव्यं तस्य वेश्मनः।

द्वितीयंचैव कर्त्तव्यं रंगपीठस्य पृष्ठतः।। 103 ।।

व्याख्या – नाट्यगृह निर्मातागण त्र्यस्र नाट्यगृह को त्रिकोणकृति बनवाये और इसके बीच में बनने वाले रंगपीठ को भी त्रिकोणाकृति ही बनवाना चाहिए। नाट्यगृह का प्रवेश द्वार इसी कोण में निर्माण करना चाहिए तथा रंगपीठ के पीछे दूसरा द्वार भी ऐसा ही बनवाना चाहिये।

वेश्म – माकान।

विधिर्यश्चतुरस्रस्य भित्तिस्तम्भसमाश्रयः।

स तु सर्वः प्रयोक्तव्यः त्र्यस्रस्यापि प्रयोक्तृभिः।। 104 ।।

एवमेतेन विधिवा कार्या नाट्यगृहा बुधैः।

पुनरेषां प्रवक्ष्यामि पूजामेव यथाविधिः।। 105 ।।

व्याख्या – भित्ति तथा स्तम्भों के विषय में जो विधि चतुरस्र नाट्यगृह के लिये कही गई, वही निर्मातागण त्र्यस्र के लिये भी प्रयोग में लायें। बुद्धिमानों के द्वारा इसी प्रकार नाट्यगृहों की रचना की जाये। अब अगले अध्याय में इनकी पूजा विधि विधान कहूँगा। मण्डप विधान नामक द्वितीय अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

2.4 सम्भावित समीक्षात्मक प्रश्न

(1) नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत के काल को बताइये।

(2) नाट्यशास्त्र में कितने अध्याय हैं। अध्यायों में आये विषयों को बताइये।

(3) नाट्यशास्त्र को पंचम वेद क्यों कहते हैं ?

(4) नाट्यशास्त्र क्यों लिखा गया ?

(5) पृथ्वी पर नाट्यशास्त्र का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किये ?

(6) नाट्यशास्त्र में सर्वप्रथम कितनी वृत्तियों का प्रयोग किया गया ?

(7) प्रथम प्रयोग किस विषय से सम्बन्धित था।

(8) नाट्य में विध्न कर्ता कौन थे और वे क्यों विध्न डालते थे ?

(9) नाट्यशाला बनने का आदेश किसने किसको दिया ?

(10) नाट्यशाला कितने प्रकार की होती है ?

(11) नाट्य प्रारम्भ होने से पूर्व देवताओं की क्यों पूजा की जानी चाहिए ?

(12) मनुष्यों के लिए निर्मित रङ्गशाला की कितनी लम्बाई – चौड़ाई होनी चाहिए ?

(13) रङ्गशाला का निर्माण किस शुभ नक्षत्र में करने का निर्देश किया गया है ?

(14) चतुरस रंगशाला में किस दिशा में कितने स्तम्भ होने चाहिए ?

(15) रंगशाला के स्तम्भों के निर्माण संबंधी उपकरणों का निर्देश कीजिये ?

(16) नाट्यशाला में स्तम्भों का स्थापन किस प्रकार करना चाहिये ?

(17) स्तम्भ स्थापन के पश्चात ब्राह्मणों को दान दक्षिणा क्यों देना चाहिए ?

(18) नाट्यशाला के स्तम्भों पर किस प्रकार का चित्रादि होना चाहिए ?

(19) दीवारों को उठाते समय किन मन्त्रों का उच्चारण होना चाहिए ?

(20) विकृष्ट एवं मध्यम नाट्यशाला का आकार–प्रकार किस प्रकार का होना चाहिए ?

<u>उत्तर</u>

(1) नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि के समय के विषय में निश्चित मत नहीं है। ई.पू. की दूसरी शती से लेकर ई. की दूसरी शती तक इसका समय माना जाता है। संभवतः नाट्यशास्त्र का निश्चित रूप ई. की दूसरी शती तक अस्तित्व में आ चुका था।

(2) नाट्यशास्त्र में 36 अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में नाट्योत्पत्ति, दूसरे से लेकर 5वें अध्याय तक नाट्यसह निर्माण विधि, रंगदेवता का पूजाविधान, पूर्वरंग विधान का विवरण किया गया है। 6वें से 7वें तक रस भाषादि का वर्णन है। 8वें से 15वें अध्याय तक चतुर्विध अभिनयों का वर्णन है। 16 एवं 17वें अध्याय में नाट्यलक्षण, काव्य दोषादि की चर्चा है। 18–20 तक वस्तु, सन्धि सन्ध्यशें की चर्चा है। 21वें आहार्य अभिनय की गयी है। 22–24 अध्याय तक नायिका संबंधी विवेचन है। 25–27 तक अभिनय संबंधि निर्देश है। 28–32 अध्याय तक वाद्य संबंधी एवं ताल संबंधी विवेचन है। 33वें में – गायक'यवादक के गुणों का, 34वें में मृदशें का, 35वें में पात्रों की भूमिका, 36वें में पूर्वरङ्ग विधान का वर्णन किया गया है।

(3) नाट्यशास्त्र के पंचम वेद इसलिये कहते हैं, क्योंकि चारों वेदों के सार तत्त्व लेकर इसकी रचना की गयी है।

(4) चाहे कुछ समय के लिए ही सही सांसारिक दुःखों से छुटकारा पाने के लिए नाट्यशास्त्र की रचना की गयी।

(5) पृथ्वी पर सर्वप्रथम नाट्य का प्रयोग भरत के शिष्यों ने किया था।

(6) नाट्यशास्त्र में सर्वप्रथम कैशिकी वृत्ति को छोड़कर शेष तीनों वृत्तियों का प्रयोग किया गया था।

(7) नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रथम प्रयोग देव–दानवों की कथा से संबंधित था।

(8) नाट्य में विध्नकर्ता राक्षस थे, क्योकिं उन्हें इसमें स्थान नहीं दिया गया था।

(9) नाट्यशास्त्र बनाने के लिए ब्रह्मा ने विश्वकर्मा को आदेश दिया।

(10) नाट्यशास्त्र तीन प्रकार की होती हैं, विकृष्ट, चतुरस्र, त्र्यस्र। इनके माप तीन प्रकार के होते हैं – ज्येष्ठ, मध्य, अवर।

(11) रूपकों के प्रयोग की सफल समाप्ति हेतु, रङ्गदेव की पूजा करना आवश्यक होता है।

(12) मनुष्यों के लिए निर्मित नाट्यगृह की लम्बाई 64 हाथ की एवं चौड़ाई 32 हाथ ही रखी जानी चाहिए।

(13) रङ्गशाला का निर्माण के लिए शुभ नक्षत्र इस प्रकार है – तीन उत्तरा शब्द युक्त नक्षत्र मृगशिरा विशाखा, रेवती हस्त, तिष्य।

(14) चतुरस रङ्ग शाला के भीतर की ओर दस स्तम्भ खड़े किये जाते हैं। तत्पश्चात् दिशाओं में उचित अन्तर देते हुए मण्डप को धारण करने में समर्थ 6 स्तम्भ लगाये जाते हैं। उनके ऊपर आठ स्तम्भ रखे जाते हैं। वेदिका के पार्श्व में चार स्तम्भों से युक्त मत्त्वारणी का निर्माण किया जाता है।

(15) नाट्यशाला में स्तम्भों के निर्माण हेु अन, काष्ठ, डोरी, कपास, मूंज, शहतीर, विविध प्रकार के रत्न, चित्रकारी हेु रङ्ग, आदि उपकरणों की आवश्यकता होती है।

(16) नाट्यशाला में स्तम्भों का निर्माण स्वस्ति वाचन पुण्य मंत्रोच्चारण, एवं जय शब्द के उच्चारण साथ करना चाहिये।

(17) स्तम्भ स्थापन के पश्चात् ब्राह्मणों को दान इसलिए देना चाहिए ताकि स्तम्भ हिले डुले न एवं किसी प्रकार का अशुभ न होने पावे।

(18) नाट्यशाला के स्तम्भों पर काष्ठ पुतलियों एवं चित्र विचित्र रचना करवानी चाहिए। चित्र में लताबन्ध तथा अन्य विलास क्रीड़ाओं वाले स्त्री–पुरुषों के कार्य प्रदर्शित करने वाले चित्र होने चाहिए।

(19) स्तम्भों को उठाते समय इस यन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए – सुमेरु पर्वत स्थिर है, हिमालय बड़ा बलवान है, हे स्तम्भ तू भी उसी प्रकार अचल होकर राजाओं को विजय देने वाला बने।

(20) विकृष्ट नाट्यशाला सबसे बड़े आकार का होता है। इस नाट्यशाला को बनवाते समय चौसठ हाथ लंबी भूमि को नापकर उसे दो भागों में विभक्त करना चाहिए। पुनश्य पीछे के आधे भाग को 2 भागों में विभक्त कर, उसके आगे के भाग में रंगपीठ या रंग शीर्ष का निर्माण करना चाहिये और पीछे के आधे भाग में नेपथ्यगृह का निर्माण कराना चाहिए। मध्यम प्रेक्षागृह का निर्माण भी इसी विधि से किया जाता है।

निर्देश–(1) समीक्षात्मक प्रश्नों के विस्तार हेु सम्बन्धित कारिकाओं के भावों का समावेश किया जा सकता है तथा तद्विषयक कारिका में भी उद्घृत की जा सकती है।

(2) सविस्तार जानकारों हेतु नाट्यशास्त्र की टीका अभिनवभारती का स्वाध्याय किया जा सकता है।

2.5 उपयोगी पुस्तकें –

1. नाट्यशास्त्र – भरतमुनि, सका0 मोतीलाल, बनारसी दास, दिल्ली।
2. संस्कृत जेयटिक्स – एस. के. डे प्रकाशक के एल. मुखोपाध्याय कलकत्ता, 1890
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला, वाराणसी।

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डनमुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAST-109(N)
नाट्यशास्त्र

खण्ड—ख

धनञ्जय कृत दशरूपक 39—81

इकाई — 1	ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का परिचयएवं प्रथम प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या	43—60
इकाई — 2	तृतीय प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या एवं समीक्षात्मक प्रश्न एवं उत्तर	61—81

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश, प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 सीमा सिंह — कुलपति, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 राम किशोर शास्त्री — आचार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 के0जे0 नसरीन — आचार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 हरिदत्त शर्मा — आचार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ0 स्मिता अग्रवाल — सहायक आचार्य, मानविकी विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो0 राजेश्वर मिश्र — कुरूक्षेत्र, विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र

लेखक

प्रो0 मन्जुला जायसवाल — इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 विनोद कुमार गुप्त — आचार्य, मानविकी विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 स्मिता अग्रवाल — उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

संयोजक

डॉ0 स्मिता अग्रवाल — सहा0 आचार्य, मानविकी विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

2023 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2023

ISBN- 978-93-83328-33-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारा एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार सिंह उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज –2023

खण्ड–ख – पाठ्यक्रम – परिचय–धनञ्जय कृत दशरूपक

इस पाठ्यक्रम के खण्ड 'ख' में आचार्य धनञ्जय कृत दशरुपक के प्रथम तथा तृतीय प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या की गई है। इस खण्ड की प्रथम इकाई में ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का परिचय एवं प्रथम प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या की गई है तथा द्वितीय इकाई में तृतीय प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या एवं सम्भावित समीक्षात्मक प्रश्न दिए गए है।

इकाई– 01 धनञ्जय दशरूपक

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 दशरूपक ग्रन्थ का वरिचय
1.3 विषय वस्तु प्रकाशों का संक्षिप्त परिचय
  1.3.1 प्रथम प्रकाश
  1.3.2 द्वितीय प्रकाश
1.4 ग्रन्थकार का परिचय
1.5 प्रथम प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या

1.0 उद्‌देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद –

1. दशरूपक का समग्र परिचय जैसे सभी चारों प्रकाशों का परिचय, चारों प्रकाशों में प्रतिपादित विषयों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया जा सकेगा।
2. ग्रन्थकार का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
3. दशरुपक के प्रथम प्रकाश की कारिकाओं का अर्थ समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

नाट्यविधा के अगों प्रत्यङ्गों का वर्णन करने वाले ग्रन्थों में "दशरूपक" का महत्वपूर्ण स्थान है। दशरूपक एक लघुग्रन्थ होने पर भी अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अनेक परवर्ती आचार्यों ने इसका अनुसरण किया है। दशरूपक के चार अध्यायों में आचार्य धनञ्जय ने रूपक से सम्बन्धित सभी तत्त्वों का विवेचन किया है। शैली एवं विषय की दृष्टि से यह अद्वितीय रचना है धनञ्जय ने इस ग्रन्थ में गम्भीर विषय को भी सरल एवं मौलिकतापूर्ण ढ़ंग से प्रस्तुत किया है दशारूपक की कारिकाओं को समझने के लिए उसपर 'अवलोक' नामक वत्ति लिखी गयी है। जिसे उनके अनुज आचार्य धनिक ने लिखा है। इसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नही है।

1.2 दशरूपक का परिचय

भरत के वृहद् नाट्यशास्त्रीय विषयों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने वाला यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं मन्दबुद्धि प्राणियों के लिए तो अत्यन्त उपादेय है। इस ग्रन्थ में चार प्रकाश हैं। इस ग्रन्थ के कारिकाओं की रचना धनञ्जय ने की है एवं उन पर 'अवलोक' नाम की टीका उनके छोटे भाई धनिक ने लिखी है।

दशरूपक में चार प्रकाश हैं जिनमें प्रतिपादित विषय इस प्रकार है –

1.3 विषयवस्तु (प्रकाशों का संक्षिप्त परिचय)

1.3.1 प्रथम प्रकाश

1.3.1.1 मङ्गलाचरण –

इस प्रकाश में भारतीय नाट्यपरम्परानुसार इष्ट देवों एवं आचार्य भरत मुनि की वन्दना की गयी है।

1.3.1.2 प्रयोजन –

अनुबन्ध चतुष्टय – विषय, अधिकारी, संबन्ध एवं ग्रन्थ का प्रयोजन विवेचित है। नाट्य शास्त्रीय विषयों को संक्षेप में प्रस्तुत करना, जिससे मन्द बुद्धि प्राणी को भी इस गंभीर विषय का ज्ञान हो सके। ग्रन्थ एवं विषय में प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव संबंध है। आनन्दानुभूति को ही नाट्य का प्रयोजन स्वीकार किया गया।

1.3.1.3 रूपक के भेदक तत्त्व –

नाट्य के तीन प्रमुख तत्त्व वस्तु, नेता, रस में से वस्तु का विस्तृत विवेचन किया गया है।

1.3.1.4 वस्तु के भेद –

वस्तु के दो प्रमुख भेद हैं – आधिकारिक एवं प्रासप्रिक। आधिकारिक कथावस्तु प्रधान कथावस्तु को कहते हैं। प्रासप्रिक के दो भेद हैं – पताका एवं प्रकरी। प्रसप्रतः आने वाली कथा वस्तु में से कुछ लम्बी कथायें पताका एवं अल्प अर्थात् सीमित प्रदेश तक रहने वाली प्रकरी कथा होती है।

1.3.1.5 अर्थ प्रकृतियाँ –

प्रत्येक नाटकादि में प्रधान कथावस्तु के नायक का एक लक्ष्य होता है – जिसे फल कहा जाता है। इस फल सिद्धि के उपायों को अर्थप्रकृतियाँ कहा जाता है। अर्थ प्रकृतियाँ पाँच होती हैं – बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य।

1.3.1.6 पाँच कार्यावस्थायें –

धनञ्जय के अनुसार फल की इच्दा वाले कथा–नायका के द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं – आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति फलागम।

अर्थप्रकृतियाँ नाटक के कथानक को अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए नाटककार द्वारा वर्णित उपाय है।

अवस्थायें नायक के व्यापार हैं।

1.3.1.7 पाँच सन्धियाँ –

धनञ्जय के अनुसार किसी एवं प्रयोजन द्वारा अन्वित कथा–भागों को किसी दूसरे प्रयोजन से युक्त करने वाला कथा–सम्बन्ध सन्धि कहलाता है। इनकी संख्या पाँच है – मुख प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श या विमर्श और उपसंहृति या निर्वहण।

पाँचों संधियों के चौसठ अंग हैं। सभी सन्ध्यशें का प्रयोग नाटकादि में किया जाना आवश्यक नहीं है।

विशेष प्रयोजन के निमित्त इनका प्रयोग किया जाता है, जो निम्न है –

1. इष्ट अर्थ की रचना,
2. गोप्य अर्थ का छिपाना,
3. प्रकाश्य अर्थ को प्रकट करना,
4. अभिनेय में राग वृद्धि,
5. चमत्कार का समावेश,
6. काव्य की कथा–वस्तु का विस्तार,

1.3.1.8 समस्त कथावस्तु का दो भागों में विभाजन –

सूच्य – श्रव्य,

सूच्य के अन्तर्गत पाँच उपाय हैं –

विष्कम्भक, चूलिका, अङ्कास्य, अङ्कावतार, प्रवेशक

श्रव्य के अन्तर्गत पात्रों के पारस्परिक संवाद आते हैं जो कई प्रकार के होते हैं।

प्रकाश, स्वगत, अपवारित, जनान्तिक

आकाशभाषित का प्रयोग नेपथ्य से किया जाता है।

1.3.2 द्वितीय प्रकाश –

इसमें रूपकों के दूसरे भेदक तत्त्व 'नायक' का विवेचन किया गया है। नायक के चार भेद हैं –

धीरोदात्त, धीरललित, धीर प्रशान्त, धीरोद्धत

नायक के सहायकों में विट विदूषक, कञ्चुकी, पीठमर्द, होते हैं।

श्रृंगार नायक के चार रूप होते है – दक्षिण, शठ, धृष्ट, अनुकूल।

1.3.2.1 नायिका–विचार

नायिका नायक की सहचरी होती है, जो नायक के गुणों से ही युक्त होती है।

नायिका के सर्वप्रथम तीन भेद हैं – स्वकीया, परकीया, साधारण स्त्री।

स्वकीया के तीन भेद होते हैं – मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा।

नायिका की दशा के आधार पर उसके आठ भेद होते हैं – स्वाधीन पतिका, वासक सज्जा, घिरहोरकष्ठिता, खण्डिता, कलहस्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया, अभिसारिका।

1.3.2.2 नाट्य वृत्तियाँ

नायक के मानसिक, वाचिक, कायिका व्यापार को वृत्तियाँ कहते हैं। वृत्तियाँ नाट्य माता कहलाती हैं।

सात्त्वती – ये मानसिक, कायिक, वाचिक अभिनय होते हैं।

कैशिकी – स्त्रीप्रधान, प्रपरु, धोखा आदि से संबंधित व्यापार होता है।

भारती – संस्कृत बहुल वाग्व्यापार होता है। यह सभी वृत्तियों में रहती है।

1.3.3. तृतीय प्रकाश –

इसमें रूपक के दस भेदों का विवेचन किया गया है – नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार वीथी, अङ्क, ईहामृग – ये दस भेद हैं।

1.3.4. चतुर्थ प्रकाश –

इसमें रूपकों के तीसरे भेदक तत्त्व रस का विवेचन है 'विभावानुभाव, सात्विक भाव तथा व्यभिचारी भावों के द्वारा आस्वादन योग्य स्थायीभाव ही रस कहलाता है।'

यह रस सहृदय में होता है। अनुकार्य राम, दुष्यन्त आदि में नहीं पाया जाता है। धनञ्जय के अनुसार रस वाक्यार्थ रूप होता है। रस और काव्य का सम्बन्ध अभिधा, लक्षणा अथवा व्यञ्जना शक्तियों द्वारा नहीं स्थापित हो सकता है। धनञ्जय काव्य और रस में भाव्य–भावक–भाव सम्बन्धमानते हैं, जो तात्पर्य शक्ति द्वारा सिद्ध होता है।

तात्पर्य शक्ति वक्ता के तात्पर्य भूत अर्थ को देती है। धनञ्जय ने तात्पर्य को 'यावत्

कार्यपर्यवसायित्वात्' माना है। धनञ्जय ने नाट्य में शान्त रस को स्वीकार नहीं किया, वे आठ रस को ही मान्यता प्रदान करते हैं। इनके अनुसार नागानन्द का नायक जीमूतवाहन धीरोदात्त नायक, धीर प्रशान्त नहीं।

धनञ्जय ने दशरूपक में काव्य और रस में भाव्य भावक भाव सम्बन्ध माना है। रसादि रूप अर्थ को भी तात्पर्यशक्ति द्वारा सिद्ध माना है, क्योंकि उनकी तात्पर्य शक्ति वक्ता के तात्पर्य भूत (रसादि) अर्थ को ही देकर पर्यवसित होती है।

1.4 ग्रन्थकार का परिचय

दशरूपके के रचयिता धनञ्जय विष्णु के पुत्र थे। धनञ्जय मालवा के परमारवंशीय राजा भुञ्ज (974–995) के सभासद थे। धनञ्जय ने नाट्यशास्त्र के अत्यधिक गम्भीर गहन एवं विस्तृत विषय को संक्षिप्त करके दशरूपक की रचना की।

सरलता की दृष्टि से इस ग्रन्थ की अधिकांश कारिकायें अनुष्टुप छनद में लिखी गयी है। धनञ्जय मीमांसक थे। रस सम्बन्धी उनके विचार मीमांसा दर्शन पर आधारित हैं।

धनञ्जय 10वीं शताब्दी के आचार्य हैं। धनञ्जय के कनिष्ठ भ्राता थे जो विष्णु के पुत्र एवं राजा भुञ्ज के सभासद भी थे।

धनिक ने दशरूपक की कारिकाओं पर 'अवलोक' नाम की टीका लिखी जो अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण है। 'अवलोक' दशरूपक की सर्वोत्तम टीका मानी जाती है। धनिक साहित्य शास्त्र, नाट्य शास्त्र, मीमांसा के परम् विद्वान थे।

दशरूपक के चारो प्रकाशो में उदधृत उदाहरणों में से चौबीस उद्धरण धनिक द्वारा स्वयंकृत हैं।

धनञ्जय के अनुसार भावक सामग्री के भेद से चित्त की चार अवस्थायें होती हैं – विकास विस्तार, क्षोभ और विक्षेप। शृंगार में चित्त का विकास, वीर में विस्तार, वीभत्स में क्षोभ, और रौद्र में विक्षेप होता है। हास्य अदभुद्, भयानक और करुण में भी क्रमशः विकासादि चारों अवस्थायें हुआ करती हैं। इस प्रकार एक–एक अवस्था का दो–दो रसों से सम्बन्ध है, इसलिए आठ ही रस होते हैं।

धनञ्जय का रस विषयक मन्तव्य सर्वथा भिन्न है। यह नहीं कहा जा सकता है कि दशरूपक का रस सम्बन्धी मत भट्टलोल्लट, शङ्कुक तथा भट्टनायक के मतों का संमिश्रण मात्र है। अभिनव गुप्त तथा दशरूपक के रस–सम्बन्धी मन्तव्यों में भी मौलिक भेद मात्र है। धनञ्जय के अनुसार रसादि तथा काव्य में जो भाव्य भावक सम्बन्ध है, वह अभिनव गुप्त अभिमत अभिव्यक्तिवाद से सर्वथा भिन्न है। अभिनवगुप्त का साधारणीकरण एवं प्रमाता का अपरिमित भाव आदि भी दशरूपक के रससम्बन्धी मन्तव्य में परिलक्षित नहीं होता। मीमांसा के आधार पर परिकल्पित दशरूप के रस सिद्धान्त में शैवागम की भित्ति पर स्थापित अभिनवगुप्त के रस सिद्धान्त के साथ ऊपरी समानता ही है। धनञ्जय के रस सिद्धान्त का अपना विशिष्ट रूप है।

1.5 प्रथम प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या

दशरूपके के प्रथम प्रकाश का प्रारम्भ मंगलाचरण से किया गया है। जो इस प्रकरण ग्रन्थ की निर्विध्न समाप्ति के लिए है –

नमस्तस्मै गणेशाय यत्कण्ठः पुष्करायते।

मदाभोगधनध्वानः नीलकण्ठस्य ताण्डवे।। 1 ।।

अर्थ – जिस गणेश जी का मद की परिपूर्णता से गम्भीर ध्वनि वाला कण्ठ, नीलकण्ठ (शिव) के ताण्डव में मृदङ्ग का काम करता है, उन गणेश जी को नमस्कार है।
यहाँ खण्ड श्लेष द्वारा उपमा अलङ्कार प्रगट हो रहा है, क्योंकि नीलकण्ठ अर्थात् नीलकण्ठ वाले मयूर के ताण्डव में जैसे मेघ की ध्वनि मृदङ्ग का कार्य करती है, उसी प्रकार शिव के ताण्डव नृत्य में गणेश की कण्ठध्वनि मृदङ्ग का काम करती है।

पृष्करायते – मृदंग का सा आचरण करने वाला, मदाभेग – मद से परिपूर्ण, धनध्वानः – (सघन) गम्भीर ध्वनि।

दशरूपानुकारेण यस्य माद्यन्ति भावकाः।

नमः सर्वविदे तस्मै विष्णवे भरताय च।। 2 ।।

अर्थ – उन सर्वविद् अर्थात् (सर्वज्ञ, नाट्य विधा के पूर्ण ज्ञाता) विष्णु तथा आचार्य भरत को नमस्कार है, जिनके दशरूपों (दश अवतारों, नाटकादि दशरूपकों) के अनुसार (ध्यान अभिनय) के द्वारा भावक जन (ध्यान करने वाले, रसिक) प्रसन्न हो जाते हैं।

भावकाः – ध्यान करने वाले, रसिक

यहाँ श्लिष्ट विशेषणों द्वारा नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक मुनि भरत को तथा 'विष्णु' पद के प्रयोग के द्वारा आचार्य धनञ्जय ने अपने पिता को नमस्कार किया है। दशरूपानुकारेण तथा भावक दोनों पदों में श्लेष है।

विशेष– सर्वविद् (1 सर्वज्ञ, (2) नाट्यविधा के पूर्ण ज्ञाता)

दशरूपो – (1 दश अवतारों (2) नाटकादि दशरूपकों)

भावक जन – (1 ध्यान करने वाले, (2) रसिक)

दशरूपक ग्रन्थ के प्रति श्रोता की प्रवृत्ति – निमित्त को बताया जा रहा है –

कस्यचिदेव कदाचिद्दयया विषयं सरस्वती विदुषः।

घटयति कमपि तमन्यो व्रजति जनो येन वैदग्धीम्।। 3।।

अर्थ – कदाचिर सरस्वती कृपा करके सभी किसी विद्वान को किसी ऐसे विषय से घटित (युक्त) कर देती है, जिससे अन्य जन भी पाण्डित्य को प्राप्त हो जाते हैं। (आर्यावृत्त)

विशेष – वैदग्धीम् – पांडित्य, घटयति – योजित करना

ग्रन्थकार धनञ्जय स्वयं के इस विषय के प्रति प्रवृत्त होने का निमित्त बतलाते हैं –

उद्धृत्योद्धृत्य सारं यमखिलनिगमान्नट्यवेदं विरिरिु –

श्चक्रे यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नीलकण्ठः।

शर्वाणी लास्यमस्य प्रतिपदमपरं लक्ष्मः कः कर्तुमीष्टे

नाट्यानां किन्तु किघचत्प्रगुणरचनया लक्षणं संक्षिपामि।। 4 ।।

अर्थ – ब्रह्मा ने समस्त वेदों का सार निकाल कर जिस नाट्यवेद की रचना की, मुनि भरत ने भी जिसका प्रयोग (अभिनय) प्रस्तुत किया, शिव ने जिसका ताण्डव नृत्य को तथा पार्वती ने लास्य नृत्य को किया, उसका (नाट्यवेद) का प्रतिपद लक्षण करने में कौन समर्थ है, तथापि किसी प्रकृष्ट गुणवाली अथवा सरल (प्रगुण) रचना के द्वारा मैं नाट्य के कुछ लक्षणों को संक्षेप से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

उदधृत्य – निकालकर, विररिु – ब्रह्मा, नीलकण्ठः – महादेव, लक्ष्म – लक्षण, प्रगुण रचना – विस्तृत रचना।

नोट – नाट्यवेद की रचना के विषय में प्रचलित भारतीय परम्परा की ओर संकेत किया गया है।

करण–अङ्गकार – हाथ पैर इत्यादि के व्यवस्थित करना 'करण' कहलाता है। कलात्मक ढ़ङ्ग से अङ्गों का विक्षेप अङ्गकार कहलाता है।

विरचित – ब्रह्मा, प्रमुख रचना – प्रकृष्ट गुणवाली, शर्वाणी – पार्वती, नाट्यवेद एवं दशरूपक का एक विषय है। अतः इस ग्रन्थ में पिष्टपेषण के फलस्वरूप पुररुक्ति दोष का परिहार करते हुए कहा जा रहा है –

व्याकीर्णे मन्दबुद्धोनां जायते मतिविभ्रमः।

तस्यार्थस्तत्पदैस्तेन संक्षिप्य क्रियतेऽञ्जसा।। 5।।

भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र सदृश विशालकाय ग्रन्थ में मन्द बुद्धि वाले व्यक्तियों को बुद्धिभ्रम हो जाता है, वे यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाते। अतः प्रकृत ग्रन्थ में नाट्य वेद का ही अर्थ उसके ही पदों द्वारा सरल बोधगम्य शैली में संक्षिप्त करके प्रस्तुत किया जा रहा है।

नोट – इस प्रकार दशरूपक स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर नाट्यशास्त्र का ही लघु रूप है।

'व्याकीर्ण' – विस्तृत, अञ्जसा – सरल रीति से, मतिविभ्रम – मतिमोह।

इस प्रकरण ग्रन्थ (दशरूपक) का प्रयोजन है। दशरूपकों का ज्ञान कराना, पुनश्च दशरूपकों का क्या प्रयोजन है – व्याख्यान किया जाता है –

आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः।

योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय।। 6।।

अल्पबुद्धि व्यक्ति आनन्द को प्रवाहित करने वाले रूपकों का फल भी इतिलक्षादि के समान ही केवल व्युत्पत्ति को (अर्थात् लौकिक ज्ञान की प्राप्ति और कलादि में विदग्धता प्राप्त करना) मानते हैं। रसास्वाद से विमुख उन व्यक्तियों को नमस्कार है।

इत्यादिना त्रिवर्गादिव्युत्पतिं काण्युफलत्वेनेच्छन्ति चन्निरासेन स्वसंवेद्यः परमानन्दरूपा रसास्वादो दशरूपाणां फलं न पुनरितिहासादिवत् त्रिवर्गादिण्युत्पत्तिमात्र मिति दर्शितम्। न इति सोल्लुण्ठम्। काण्योपनिबद्ध धीरोदात्तद्यवस्थानुकारश्चतुर्विधाभिनयेन तादात्म्यापत्तिर्नाट्यम्।

कुछ आचार्य (भामह) काव्य का फल धमार्थ काम आदि त्रिवर्ग की प्राप्ति, कलाओं का ज्ञान तथा किर्ति एवं प्रीति को मानते हैं किन्तु ग्रन्थकार धनञ्जय स्व संपेद्य परम आनन्दरूप रसास्वाद को ही दशरुपकों का फल मानते हैं।

विशेष – व्युत्पत्तिमात्रं – धर्मादिकाज्ञान, आनन्दनिस्यन्दिषु – आनन्द को देने वाले सर्वप्रथम नाट्य लक्षणको संक्षेप में बताया जा रहा है –

अवस्थानुकृति नार्ट्यम् रूपं दृश्यतयोच्यते।

रूपकं तत्समारोपात्, दशधैव रसाश्रयम्।।

अर्थ – काव्य में उपनिबद्ध धीरोदात्तादि नायकों की अवस्थाओं का अनुकरण अर्थात् चार प्रकार के अभिनय द्वारा अनुकार्य के साथ एकरूपता प्राप्त कर लेना ही 'नाट्य' है।

दृश्य होने के कारण या नाट्य 'रूप' भी कहलाता है। जिस प्रकार मुख पर चन्द्रमा का आरोप होने के कारण रूपक कहलाते है। उसी प्रकार नट में रामादि की अवस्था का आरोप होने के कारण नाट्य को रूपक भी कहते हैं। इस प्रकार एक ही अर्थ में प्रयुक्त नाट्य, रूप–रूपक –

इन तीनों शब्दों का इन्द्र, पुरन्दर तथा शक्र आदि के समान प्रवृत्ति निमित्त का भेद दिखलाया गया है।

विशेष – रसाश्रयम् – रसों पर आश्रित।

दशधैव रसाश्रयम्।। 8 ।।

रस पर आश्रित रूपक दश प्रकार का होता है। यह अवधारण शुद्ध रूपकों की दृष्टि से की गयी है।

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।

व्यायोगसमवकारौ वीश्यङ्केहामृगाा इति।। 8 ।।

अर्थ – नाटक, प्रकरण, भाग, प्रस्सन डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अङ्क, ईहामृग – ये दश रूपकों के भेद हैं। आचार्य धनञ्जय ने उपर्युक्त दस भेदों के अतिरिक्त अन्य भेदों को स्वीकार नहीं किया।

अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम्

अर्थ – भाव पर आश्रित रहने वाला नृत्य भिन्न है। नाट्य या रूपक रसों पर आश्रित है और नृत्य भाव पर। नाट्य एवं नृत्य एक दूसरे से चार दृष्टियों से भिन्न है –

(1) **विषय – भेद** – नाट्य रसाश्रित है, नृत्य भावाश्रित है।

(2) **स्वरूप भेद** – नृत्य शब्द, (गात्र विक्षेपे) धातु से बना हैं तात्पर्य यह है कि नृत्य में गात्र विक्षेप अर्थात् आङ्गिक – अभिनय की प्रधानता होती है, जबकि नाट्य में चारों प्रकार के अभिनय होते हैं।

(3) **कर्तृभेद** – नाट्य कर्ता को 'नट' एवं नृत्य कर्ता को 'नर्तक' कहा जाता है।

(4) **संज्ञा भेद** – नृत्य केवल देखा जा सकता है, उसमें कथोपकथन नहीं होता जबकि नाट्य में संवाद प्रयुक्त होते हैं।

नृत्तंताललयाश्रयम्

अर्थ – नृत्त ताल एवं लय पर आश्रित रहता है।

चञ्चत्पुरटादि भेदों को ताल, एवं द्रुत, मध्यम, विलम्बित को लय कहते हैं। ताल एवं लय के आश्रय से अभिनय शून्य अङ्ग–विक्षेप को 'नृत्त' कहते हैं।

आद्यं पदार्थाभिनयो मार्गो देशी तथा परम्।। 9 ।।

नृत्यं पदार्थभिनयात्मकं मार्ग इति प्रसिद्धम।

नृत्तं च देशीति द्विविधस्यापि द्वैविध्यं दर्शयति

अर्थ – प्रथम पदार्थाभिनयात्मक, नृत्य 'मार्ग' भी कहलाता है तथा द्वितीय नृत्त देशी भी कहलाता है। मार्ग का उदाहरण भरतनाट्य एवं देशी का उदाहरण – भीलों आदि का नृत्य।

मधुरोद्धतभेदेन तद् द्वयं द्विविधं पुनः।

लास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम्।। 10 ।।

सुकुमारं द्वयमपि लास्यम् उद्धतं द्वितयमपि ताण्डवमिति ।

अर्थ – ये दोनों (नृत्य एवं नृत्त) मधुर एवं उद्धत भेद से लास्य और ताण्डव रूप में दो–दो प्रकार के होते हैं, जो नाटकादि के उपकारक, माने जाते हैं। तात्पर्य यह है कि कहीं–कहीं नाटकादि में अवान्तर पदार्थों से अभिनय रूप में नृत्य का और शोभा बढ़ाने के लिए नृत्य का उपयोग किया जाता है।

विशेष–लास्य–स्त्रीप्रधान नृत्य, ताण्डव – पुरुष प्रधान नृत्य, ये दोनों नाटकादि के उपकारक

होते हैं। नृत्य अवान्तर पदार्थ के अभिनय को सँवारता है और नृत्त अभिनय की शोभा की वृद्धि करता है। इस प्रकार जैसे – 'नृत्त' से नृत्य भिन्न होता है उसी प्रकार नृत्य से पृथक् नाट्य है, जिसके अन्तर्गत डोम्बी आदि का समावेश नहीं हो सकता है। सभी रूपकों अर्थात् नाटक, प्रकरण आदि में अभेद होता है। उनमें भेद होने के क्या कारण हैं ?, इस प्रकार का प्रश्न उत्पन्न होने पर उत्तर देते हैं – (कथा) वस्तु, नेता (अर्थात् नायक) और रस उन रूपकों को पृथक् करने वाले (तत्त्व) हैं –

वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः–

वस्तु भेदान्नायकभेदाद् रसभेदाद् रूपाणामन्योन्यं भेद इति ।

(कथा) वस्तु के भेद से, नायक के भेद से और (शृङ्गार आदि) रस के भेद से रूपकों में परस्पर भेद है। वस्तु दो प्रकार की होती है–

वस्तु च द्विधा।

अर्थ – वस्तु (कथावस्तु) दो प्रकार की होती है।

तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः।। 11 ।।

अर्थ – मुख्य कथावस्तु को आधिकारिक और अङ्गभूत वस्तु को प्रासंङ्गिक कहते हैं जैसे रामायण में राम–सीता का वृत्तान्त आधिकारिक कथावस्तु एवं हनुमान, सुग्रीवादि का वृत्तान्त प्रासङ्गिक कथावस्तु का उदाहरण है।

विशेष – आधिकारिकं – प्रधानकथावस्तु, प्रासङ्गिक – अङ्ग रूप में प्रयुक्त कथावस्तु आधिकारिक किसे कहते है।, यह बताया जा रहा है –

अधिकारः फलस्वाम्यधिकारी च तत्प्रभुः।

तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम।। 12 ।।

अर्थ – फल के साथ स्वस्वामिभाव सम्बन्ध अधिकार कहलाता है और फल का स्वामी अधिकारी कहलाता है। उस अधिकार या अधिकारी के द्वारा किया गया, फल प्राप्ति तक पहुँचने वाली जो कथा है, वही अधिकारिक (कथा) वस्तु है।

अधिकार – फल के साथ स्वस्वामीभाव सम्बन्ध 'अधिकार' कहलाता है।

प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः।

अर्थ – जो इतिवृत्ति दूसरे के प्रयोजन सिद्धि के लिए होता है परन्तु प्रसङ्गतः उसके अपने प्रयोजन की भी सिद्धि हो जाती है – वह प्रासङ्गिक इतिवृत्त कहलाता है, क्योंकि प्रसङ्ग वश उसकी सिद्धि होती है।

प्रासङ्गिकमपि पताकाप्रकरीभेदाद् द्विविधमित्याह।

सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।। 13 ।।

अर्थ – इनमें अनुबन्ध सहित (दूर तक चलने वाला) प्रासङ्गिक वृत्त पताका कहलाता है और एक प्रदेश में रहने वाला वृत्त प्रकरी कहलाता है। जैसे रामायण में सुग्रीव, हनुमानादि का वृत्तान्त पताका का उदाहरण है एवं शबरी का वृत्तान्त प्रकरी का उदाहरण है।

प्रदेशभाक् – एक सीमित भाग में रहने वाला।

प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम्।

पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम्।। 14 ।।

प्राकरणिकस्य भविनोऽर्थस्य स्चकं रूपं पताकावद्भवतीति पताकास्थानकम्।

तच्च तुल्येतिवृत्ततया तुल्यविशेषणतया च द्विप्रकारम्–अन्योक्तिसमासोक्तिभेदात्।

व्याख्या – जहाँ प्रस्तुत एवं आगन्तुक (भावी) कथावस्तु की समान वृत्त या समान विशेषण द्वारा अन्योक्ति रूप में सूचना हो, उसे पताका स्थानक कहते हैं। यह इस प्रकार अन्योक्ति एवं समासोक्ति के भेद से दो प्रकार का होता है।

आगन्तुभावस्य – आगे आने वाला, पताका स्थानक – पताका (ध्वजा) के समान होने के कारण पताका स्थानक कहलाता है।

अन्योक्ति का उदाहरण जैसे रत्नावली में –

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।

प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति।।

अर्थ – हे कमलनयने ! मेरे जाने का समय है, मै जा रहा हूँ। सोती हुई तुमको प्रातः मुझे ही जगाना है, इस प्रकार अस्ताचल के मस्तक पर अपनी किरणों को निविष्ट करने वाला यह सूर्य मानों कमलिनी को आश्वासन (प्रत्यायन) दे रहा है।

टिप्पणी – इस श्लोक में सूर्य एवं कमलिनी के वृत्तान्त द्वारा राजा उदयन एवं रत्नावली के भावी मिलन की सूचना दी गयी है। यहाँ उदयन एवं रत्नावली की कथा प्रस्तुत है उसकी समष्टि से सूर्य एवं कमलिनी का वृत्तान्त अन्य (अप्रस्तुत) ही है। अतः यहाँ अन्योक्ति द्वारा पताकास्थानक का प्रयोग किया गया है।

तुल्यविशेषण का उदाहरण –

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुरुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा –

दायासं श्वसनोदगमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः।

अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं

पश्यन्कोपविपाटलद्युति मुखं देव्याः करिष्याम्यहम्।

अर्थ – मैं चटखती कलियों वाली, पीले वर्ण की प्रफुल्लित होती हुई, निरन्तर वायु के सञ्चार से अपना विस्तार करती हुई मदन वृक्ष से लिप्त इस उद्यान लता को, कामवेग से रोमाञ्चित काम पीड़ा से पीली हुई, जम्हाई लेती हुई, निरन्तर दीर्घ निःश्वासों के कारण व्याकुल सकाम दूसरी स्त्री के समान देखती हुई, आज वासवदत्ता के मुख को अवश्य क्रोध के कारण लाल कर दूँगा।

यहाँ लता के तुल्य विशेषणों द्वारा उदयन एवं सागरिका के भावी मिलन जो वासवदत्ता के क्रोध के कारण बनेगा – व्यक्त है –

प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात् त्रेधापि तत् त्रिधा।

प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम्।। 15 ।।

अर्थ – यह तीन प्रकार का इतिवृत्त पुनः (1) प्रख्यात (2) उत्पाद्य (3) मिश्र भेद से तीन–तीन प्रकार का होता है। इतिहास आदि से लिया गया इतिवृत्त प्रख्यात, कवि द्वारा स्वयं कल्पित उत्पाद्य

तथा इन दोनों के मिश्रण से मिश्र कहलाता है। ये सभी इतिवृत्ति दिव्य, मर्त्य आदि भेद से भिन्न–भिन्न होते हैं।

प्रख्यात – इतिहास प्रसिद्धं, उत्पाद्यं – कवि कल्पित।

इतिवृत्ति के फल को कहा जा रहा है –

कार्यं त्रिवर्गस्तिच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च।। 16।।

धमार्थकामाः फलं तच्च शुद्धमेकैकमेकानुबन्धं द्वित्र्यनुबन्धं वा ।

अर्थ – इतिवृत्त का फल त्रिवर्ग की प्राप्ति है। वह कभी तो शुरू (त्रिवर्ग में से काई एक) और कभी एक से अनुगत तथा कभी अनेक से अनुगत होता है धर्मार्थाम को त्रिवर्ग कहते हैं। इनमें से कभी धर्म अकेला, कभी धर्मार्थ दो या कभी धर्मार्थकाम तीनों फल हो सकते है।

कार्य – फल या उद्देश्य

फल प्राप्ति के साधन बताये जा रहे हैं –

स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा।

अर्थ – उस फल का निमित्त 'बीज' कहलाता है, जिसका आरम्भ में सूक्ष्म रूप में संकेत किया जाता है, जिसका आगे चल कर अनेक प्रकार से विस्तार किया जाता है।

अवान्तरार्थविच्छेद्व बिन्दुरच्छेदकारणम्।। 17 ।।

अर्थ – अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति से कथा वस्तु के प्रयोजन में विच्छेद हो जाने पर जो उसके अविच्छेद का कारण होता है – उसे बिन्दु कहते हैं। जैसे – रत्नावली में कामदेव की पूजा एक अवान्तर कार्य है। उसकी समाप्ति पर कथा के प्रयोजन का विच्छेद होने लगता है तब वैतालिकों की यह उक्ति – 'उदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते' सुनकर रत्नावली का यह कहना – 'क्या यही राजा उदयन है – जिसके लिये मुझे पिता ने दिया है' – कथा को आगे बढ़ाने में सहायक होता है। जैसे जल में तैल बिन्दु फैल जाता है उसी प्रकार यह फलोपाय नाट्य में फैला होता है इसी लिये इसे बिन्दु कहते हैं।

बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः।

अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिता।। 18 ।।

अर्थ – बीज, बिन्दु, पताका प्रकरी और कार्य – ये पाँच अर्थ प्रकृतियाँ कही गयी हैं। अर्थ प्रकृति का अर्थ है – फल की सिद्धि के उपाय।

पांच कार्यावस्थाओं को बताया जा रहा है –

अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।

आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।। 19 ।।

अर्थ – फल प्राप्ति की इच्छा वाले व्यक्ति द्वारा आरम्भ किये गये कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं – आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। इनका क्रमशः लक्षण बताया जा रहा है –

आरम्भ – **औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।**

अर्थ – अत्यधिक फल की प्राप्ति के लिए (नायक आदि की), केवल उत्सुकता का होना 'आरम्भ' कहा जाता है। इस र्का का सम्पादन मैं करूँगा इस प्रकार का अध्यवसाय – निश्चय करना ही

आरम्भ कहलाता है।

प्रयत्न – **प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।। 20।।**

अर्थ – फल के प्राप्त न होने पर शीघ्रता पूर्वक उद्योग करना ही प्रयत्न कहलाता है। जैसे रत्नावली के द्वितीय अङ्क में – सागरिका द्वारा चित्रादि बनाना इत्यादि वत्सराज उदयन से मिलने के उपाय है। – "तथापि नास्त्यन्यो दर्शनोपाय इति यथा तथालिख्य यथासमीहितं करिष्यामि" इत्यादि कथन प्रयत्न के सूचक हैं।

त्वरान्वित – शीघ्रता से युक्त।

प्राप्त्याशा – **उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः।**

अर्थ – उपाय के होने तथा विघ्न की शङ्का होने से जो फल प्राप्ति की सम्भावना होती है – वह प्राप्त्याशा कहलाती है। उपाय के रहने पर भी विघ्न की आशंका से फल प्राप्ति का एकान्ततः निशचय नहीं हो पाता – जैसे रत्नावली नाटिका के तृतीय अङ्क में – वेश परिवर्तन एवं अभिसारण आदि मिलन के उपाय होने पर भी वासवदत्ता रूप विघ्न की आश'ा से प्राप्त्याशा को स्पष्ट किया गया है – **"एवं यद्यकालवातावली वागत्यान्यतो न नेष्यति वासवदत्ता"** इत्यादि।।

अपाय – विघ्न

नियताप्ति – **अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।**

अर्थ – विघ्नों के हट जाने पर फलप्राप्ति का नितान्त निश्चित हो जाना नियताप्ति कहलाता है। जैसे – रत्नावली नाटिका में – "सागरिका दुष्करं जीविष्यति, किं नोपायं चिन्तयसि" ?

राजा – वयस्य, देवी प्रसादनं मुक्तवा नान्यमत्रोपायं पश्यामि ?

यहाँ देवी रूप विघ्न के निवारण हो जाने पर, निश्चित फल प्राप्ति (सागरिका मिलन) हो जायेगी – सूचित किया गया है।

विशेष – उपाय – विघ्न, बाधा, प्राप्त्याशा – प्राप्तिकी आशा।

फलागम – **समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः।**

अर्थ – पूर्ण रूप से समग्र फल प्राप्ति ही 'फलागम' कहलाता है।

जैसे – रत्नावली नाटिका में रत्नावली की प्राप्ति एवं चक्रवर्तित्व की प्राप्ति फलागम कहलाता है।

1.5.1 पञ्च संधियाँ –

लक्षण – **अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः।**

यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च सन्धयः।। 22 ।।

अर्थ – (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य) पाँ अर्थप्रकृतियों का क्रमशः आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति फलागम – पाँच कार्यावस्थाओं के साथ योग होने पर क्रमशः मुख प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण – पांच संधियाँ बन जाती हैं।

1.5.1.1 सन्धि का सामान्य लक्षण

अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति।। 23 ।।

अर्थ – एक (मुख्य) प्रयोजन से सम्बन्ध रखने वाले कथाभागों का दूसरे एक अवान्तर प्रयोजन के साथ सम्बन्ध होना ही सन्धि है। यह लक्षण अन्य आचार्यों के अनुसार है।

विशेष – अन्वये – सम्बन्धित होना, एकार्ध – एक प्रयोजन

1.5.1.2 सन्धि के प्रकार

सन्धियाँ पाँच होती हैं –

मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।

अर्थ – मुख, प्रतिमुख, गर्भ, साव्यर्थ उपसंहृति।

धनञ्जय के अनुसार सन्धियों का रचनात्मक स्वरूप इस प्रकार है –

(1) बीज. आरम्भ त्र मुख सन्धि

(2) बिन्दु. प्रयत्न त्र प्रतिमुख सन्धि

(3) पताका. प्राप्त्याशा त्र गर्भ सन्धि

(4) प्रकरी. नियताप्ति त्र विमर्श (सावमर्श) सन्धि

(5) कार्य. फलागम त्र निर्वहण (उपसंहृति) सन्धि

1.5.1.2.1 मुख संन्धि–

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।। 24 ।।

अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात्।

बीजानामुत्पत्तिरनेकप्रकारप्रयोजनस्य रसस्य च हेतुमं्खसन्धिरिति व्यारव्येयं तेनात्रिवर्गफले प्रहसनन्दा रसोत्पत्तिहेतोरेव बीजत्वमिति।

अर्थ – जहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन एवं रस को निष्पन्न करने वाली बीजात्पत्ति होती है वहाँ मुखसन्धि होती है। बीज एवं आरम्भ के समन्वय से इस सन्धि के बारह अश होते हैं – उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उदभेद, भेद, करण – ये बारह अन्वर्थ नाम है।

मुख सन्धि के बीज, आरम्भ और प्रयोजन के योग से बारह अंग होते हैं – 1. उपक्षेप 2. परिकर 3. परिन्यास 4. विलोभन 5. युक्ति 6. प्राप्ति 7. समाधान 8. विधान 9. परिभावना 10. उदभेद 11. करण और 12. भेद

1.5.1.2.2 प्रतिमुख सन्धि –

लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेद्।

बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।। 30 ।।

अर्थ – उस मुख सन्धि में प्रक्षिप्त बीज का कुछ लक्ष्य कुछ अलक्ष्य रूप में उदभेद अर्थात् प्रगट होना ही प्रतिमुख सन्धि है – जैसे रत्नावली नाटिका के द्वितीय अङ्क में – वत्सराज और सागरिका के मिलन का हेतु अनुराग रूपी बीज हैं, उसका प्रथम अङ्क में उपक्षेप किया गया है। द्वितीय अङ्क में सुसंगता और विदूषक के द्वारा जान लिये जाने से कुछ कुछ लक्ष्य है तथा वासवदत्ता द्वारा चित्रफलक की घटना द्वारा कुछ–कुछ समझा गया – अतः अलक्ष्य है।

इस प्रतिमुख सन्धि के 13 अंग होते हैं –

विलास, परिसर्प, विधूप शम, नर्म नर्मव्युति, प्रगमन, निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास, तथा वर्ण संहार।

1.5.1.2.3 गर्भसन्धि –

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।

द्वादशाङ्गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसम्भवः।। 36 ।।

अर्थ – जहाँ दिखायी देकर खोये हुए बीज का बार बार अन्वेषण किया जाता है। इसमें पताका कहीं होती है, कहीं नहीं भी होती है, किन्तु प्राप्त्याशा (कार्यावस्था) अवश्य होती है। इसके बारह अङ्क होते हैं।

प्राप्तिसम्भवः – प्राप्ति की सम्भावना, प्राप्त्याशा – प्राप्ति की आशा।

उदाहरण – रत्नावली के तृतीय अङ्क में प्रथमतः विदूषक के उस वचन द्वारा सागरिका की प्राप्ति की आशा होती है जिसमें वासवदत्ता को विघ्न कहा गया और वासवदत्ता का वेषधारण करके सागरिका के अभिसारण को उपाय कहा गया है, पुनः वासवदत्ता के आ जाने पर आशा भंग हो जाती है, फिर प्राप्ति और फिर विघ्न होता है। पुनः विघ्न दूर करने के लिए उपाय खोजा जाता है। 'नास्ति देवीप्रसादनं मुक्तान्य उपाय' इस कथन द्वारा स्पष्ट किया गया है।

अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे कम : ।
संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले तथा ।। 37 ।।
उद्वेगसंभ्रभ्रमाक्षेया लक्षण च प्रणीचते ।

गर्भसन्धि के बारह अङ्ग इस प्रकार है। – अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, कम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, सम्भ्रम, आक्षेप।

1.5.1.2.4 विमर्श (अवमर्श) सन्धि –

क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।

गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।। 43 ।।

अर्थ – जहाँ क्रोध से, व्यसन से अथवा प्रलोभन से (फलप्राप्ति के विषय में) विमर्श किया जाता है तथा गर्भसन्धि द्वारा विभिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध दिखलाया जाता हैं वह अवमर्श सन्धि कहलाती है। अवमर्श का अर्थ है – उहापोह करना, पर्यालोचन। इस सन्धि में फलप्राप्ति का निश्चय हो जाता है, जैसे रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अङ्क में अग्नि के उपहृत पर्यन्त वासवदत्ता की प्रसन्नता से विघ्न रहित रत्नावली की प्राप्ति का निश्चय रूप विमर्श दिखलाया गया है।

तत्रापवाट्संफंटो विदवदवशक्लय : ।
घुतिः प्रसङ्कश्धलनं व्यवसायो– विरोधम् ।। 44 ।।

इस सन्धि के तेरह अङ्ग होते हैं – अपवाद, सफेट, विद्वत, द्रव, शक्ति, द्युति, प्रसङ्ग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन, आदान।

अवमृशेत् – विमर्श करना, व्यसन – आपत्ति।

1.5.1.2.5 निर्वहण सन्धि –

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।। 48 ।।

ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।

अर्थ – जहाँ बीज से सम्बन्ध रखने वाले मुख सन्धि आदि में अपने अपने स्थान पर बिखरे हुए (प्रारभादि) अर्थों का एक (मुख्य) प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखलाया जाता है। वह निर्वहण सन्धि कहलाती है। जैसे – रत्नावली नाटिका में सामरिका, रत्नावली, वसुभूति और बाभ्रव्य आदि के कार्यों का, जो मुखादि सन्धि में बिखरे पड़े हैं, वत्सराज के ही एक कार्य (रसावली समागम) के लिए समाहार होता है, जो इस कथन द्वारा दिखाया गया है – वसुभूतिः – "(सामरिकां निर्वर्व्यापवार्य) बाभ्रव्य, सुसदृशीयं राजपुत्र्याः।" इत्यादिना दर्शितमिति निर्वहणसन्धि।

सन्धिबिंबोधो ग्रथनं निर्णय : परिभाषणम्

प्रसादानन्दसमयाः कृतिभाषोपग्हना : ।

पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश ।। 50 ।।

निर्वहण सन्धि के 14 अङ्क होते हैं –

सन्धि, विबोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनन्द, समय, कृति, भाषा, उपगूहन, पूर्वभाव, उपसंहार, प्रशस्ति। सन्धियों के 64 अङ्गों एवं 6 प्रयोजनों का कथन किया जा रहा है।

1.5.1.3 उक्ताङ्गाना चतु:षष्टिः षोढा चैषां प्रयोजनम्।। 54 ।।

उपर्युक्त सन्धियों के 64 अङ्ग एवं 6 प्रयोजन होते हैं।

1.5.1.3.1 सन्धियों के प्रयोजन

इष्टास्यार्थस्य रचना गोप्यगुप्तिः प्रकाशनम्।

रागः प्रयोगस्याश्चर्यं वृत्तान्तस्यानुपक्षयः।। 55 ।।

(1) इष्ट अर्थ की रचना, (2) गोपनीय अर्थ को छिपाना, (3) प्रकशनीय को प्रकाशित करना, (4) अभिनेय वस्तु के प्रति राग, (5) चमत्कारिता (6) काव्य की कथावस्तु का विस्तार – ये छः प्रयोजन सन्ध्यङ्गा द्वारा सम्पादित किये जाते हैं।

1.5.2 वस्तु–निबन्धन की दृष्टि से वस्तु–विभाजन –

द्वेधा विभागः कर्त्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।

सूच्यमेव भेवत् किञ्चिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्।। 56 ।।

अर्थ – यहाँ (रूपक में) समस्त वस्तु का दो प्रकार का विभाग करना चाहिए। कुछ वस्तु तो सूच्य होनी चाहिए और दूसरी दृश्य श्रव्य।

कैसी वस्तु सूच्य होती है और कैसी दृश्य या श्रव्य – दिखलाया जाता है।

नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तु विस्तरः।

दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः।। 57 ।।

अर्थ – वस्तु जो भाग नीरस हो, या जिसका रङ्गमञ्च पर मंचन अनुचित हो, उसे भली भाँति सूचित करना चाहिए, किन्तु जो (वस्तु का भाग) चित्ताकर्षक, उदात्त रस भाव से गर्भित हो, उसे रङ्गमञ्च पर दिखाना चाहिए।

संसूच्य – सूचित होने वाला, विस्तर – विस्तार भाग।

इसी आधार पर दो प्रकार की वस्तु होती है – सूच्य (2) दृश्य। सूच्य है नीरस तथा अनुचित कथाविस्तरः दृश्य है – रोचक, उदात्त भावनाओं से पूर्ण, रसभाव पूर्ण सूच्य वस्तु के प्रतिपादन का प्रकार इस प्रकार है –

1.5.3 पाँच अथोपक्षेपक –

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्वभिः प्रतिपादयेत्।

विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतार प्रवेशकैः।। 58 ।।

अर्थ – विष्कमक, चूलिका, अङ्कास्य, अङ्कावतार, प्रवेशक इन प# अर्थोपक्षेपकों (इतिवृत्त के सूचकों) के द्वारा सूच्य वस्तु का प्रतिपादन करना चाहिए।

1.5.3.1 विष्कम्भक –

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।

संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।। 59 ।।

अर्थ – बीते हुए तथा आगे होने वाले कथाभागों का सूचन, संक्षिप्त अर्थ वाला तथा मध्यम पात्रों द्वारा प्रयुक्त जो अर्थोपक्षेपक है, वह विष्कम्भक कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है –

शुद्ध, संकीर्ण।

वृत्त – बीता हुआ, वर्तिष्य – आगे होने वाला।

एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमैः।।

अर्थ – एक या अनेक मध्यम पात्रों द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक शुद्ध और मध्यम तथा अधम पात्रों द्वारा मिलकर प्रयोजित विष्कम्भक संकर्ण कहलाता है।

1.5.3.2 प्रवेशक –

तद्वदेवानुदात्तोक्तया नीचपात्रप्रयोजितः।। 60 ।।

प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।।

अर्थ – उसी प्रकार (विष्कम्भक के) नीयपात्रों द्वारा अनुदात्त उक्तिों से प्रयुक्त, दो अङ्कों के बीच में स्थित तथा शेष (अप्रदर्शनीय) अर्थ का सूचक प्रवेशक कहलाता है।

अनुदात्तोक्ति जो उदात्त उक्ति नहीं होती, अर्थ – कथावस्तु इतिवृत्त, प्रयोजितः – प्रयुक्त करना, अन्तः बीच में।

प्रवेशक का प्रयोग दो अङ्कों के मध्य होता है और विष्कम्भक का प्रयोग प्रथम अङ्क में होता है।

1.5.3.3 चूलिका –

अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।। 61 ।।

अर्थ – जवनिका के भीतर स्थित पात्रों के द्वारा अर्थ की सूचना देना चूलिका कहलाता है। जैसे – उत्तररामचरितम् नाटक के द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में – (नेपथ्ये) स्वागतं तपाधनायाः (ततः प्रविशति तपोधना) इति नेपथ्यपात्रेण वासन्तिकयाऽत्रेयी सूचनाच्चूलिका।

जवनिका – पर्दे को कहते हैं, अर्थस्य – कथावस्तु की

महावीर चरितम् के चतुर्थ अ' के प्रारम्भ में भी चूलिका का प्रयोग किया जाता है।

1.5.3.4 अङ्कास्य –

अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्।।

अर्थ – अङ्क के अन्त में आने वाला पात्र अङ्कान्त पात्र कहलाता हैं उसके द्वारा असम्बद्ध (विच्छिन्न) अग्रिम अङ्क के अर्थ की सूचना देने के कारण –यह अङ्कस्य कहलाता है। उदाहरण – इसका प्रयोग महावीर नाटक के द्वितीय अ' के अन्त में किया गया है। द्वितीय अङ्क के अन्त में समन्त्र – भगवन्तौ वशिष्ठविश्वामित्रौ भवतः सभार्गवानाह्वयतः। इतरे क्वभगवन्तौ 2. सुभद्राः – महाराज दशरथस्यान्तिके ! इतरे – तदनुरोधात्तत्रैव गच्छणमः, इत्यकङ्कसमाप्तौ (ततः प्रविशन्त्युपविष्टा वशिष्ठविश्वामित्रपरशुरामाः) यहाँ पर्वू अङ्क के अन्त में प्रविष्ट होने वाले सुमन्त्र पात्र के द्वारा शतानन्द और जनक की कथा समाप्त हो जाने पर अग्रिम अङ्क के आरम्भिक अर्थ की सूचना की गयी है। अतः अङ्कास्य है।

अनुपक्षय – अविच्छेद, गुप्तिः – छिपाना

1.5.3.5 अङ्कावतार –

अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कास्याविभावतः।। 62 ।।

अर्थ – जहाँ अङ्क का अन्त हो जाने पर अग्रिम अङ्क अभिन्न (अविच्छिन्न) रूप से अवतरण हो जाता है – वह अङ्कावतार कहलाता है। अङ्कावतार में अङ्क में प्रवष्टि पात्रों द्वारा जो कथा अङ्क में चलती रहती है उसमें विच्छेद किये बिना ही अन्य अङ्क अवतरित हो जाता है।

जैसे मालविकग्निमित्र के प्रथम अङ्क के अन्त में विदूषक – "तेन हि द्वावपि देव्याः प्रेक्षागृहं गत्वा सङ्गीतकोपकरणं कृत्वा तत्रभवती दूतं विसर्जयतम् अथवा मृदङ्गशब्दं एवैनमुत्थापयति" यहाँ से प्रारम्भ करके मृदङ्ग का शब्द सुनने के अनन्तर सभी पात्र द्वितीय अङ्क के आरम्भ में प्रथम अङ्क में प्रविष्ट पात्रों के शिष्य शिक्षा क्रम का अवलोकन करना आरम्भ कर देते हैं।

एभिः संसूचयेत् सूच्यं दृश्यमङ्कैप्रदर्शयेत्।

अर्थ – इन अर्थोपक्षेपकों के द्वारा सूचित करने योग्य अर्थ को सूचित करना चाहिये और मञ्च पर दिखलाने योग्य वस्तु को अङ्क में दिखलाना चाहिये।

नाट्य धर्म की दृष्टि से वस्तु तीन प्रकार का माना गया है। (5) चमत्कारिता (6) काव्य की कथावस्तु का विस्तार – ये छः प्रयोजन सन्ध्यङ्गो द्वारा सम्पादित किये जाते हैं।

1.5.4 नाट्यधर्म –

नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते।। 63 ।।

सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यनश्राव्यमेव च।

अर्थ – नाट्यधर्म की दृष्टि से वस्तु के तीन भेद इस प्रकार हैं – सबके सुनने योग्य (सर्वश्राव्य), (2) नियत जनों के सुनने योग्य (नियत श्राव्य), (3) किसी के भी न सुनने योग्य (अश्राव्य)।

नाट्यद्यर्म – वाचिक अभिनय या संवाद प्रयोग को कहते हैं।

1.5.4.1 सर्वश्राव्य – अश्राव्य –

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम्।। 64।।

अर्थ – सबके सुनने योग्य वस्तु प्रकाश तथा किसी के भी न सुनने योग्य वस्तु स्वगत कहलाती है।

1.5.4.1.1 नियतश्राव्य –

द्विधाऽन्यान्नाट्यधर्माख्यं जनान्तमपवारितम्

अर्थ – अन्य नाट्यधर्म (नियतश्राव्य) दो प्रकार का होता है। – जनान्त, अपवारित।

1.5.4.1.2 जनान्तिकम् –

त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।। 65।।

अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्।।

अर्थ – वार्तालाप के सन्दर्भ में जो त्रिपताक रूप हाथ की मुद्रा के द्वारा अन्यों को बचाकर (अपवार्य) बहुत से जनों के मध्य में दो पात्र आपस में वार्तालाप करते हैं। वह जनान्तिक होता है।

1.5.4.1.3 त्रिपताका –

अनामिका एवं अंगुष्ठ के अतिरिक्त मध्य की तीन अंगुलियों के प्रयोग को कहते हैं।

अपवार्य – बचाकर

1.5.4.1.4 अपवारित –

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम्।। 66 ।।

अर्थ – जहाँ किसी पात्र के मुँह फेरकर दूसरे व्यक्ति से गुप्त बात कही जाती है – वह अपवारित संवाद कहलाता है।

1.5.4.1.5 आकाशभाषित –

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।

श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्।। 67 ।।

अर्थ – जहाँ एक अकेला पात्र दूसरे पात्र के बिना स्वयं कुद कहता है और सुनकर उसका उत्तर देता है 'क्या कहते हो' इस प्रकार कहकर उत्तर देता है, वहाँ आकाश भाषित होता है।

विशेष – अनुक्रम् – न कहना, ब्रवीति – कहता है।

इत्याद्यशेषमिह वस्तु विभेदजातं रामायणादि च वृहत्कर्था च।

आसूत्रयेत्तदनु नेतृरसानुगुण्याच्चित्रां कथामुचितचारुवचःप्रपञ्चैः।। 68 ।।

अर्थ – इस प्रकार वस्तु के समस्त भेदों का तथा रामायण आदि एवं वृहत्कथा का अनुशीलन करके, तत्पश्चात् नेता और रस अनुरूप उचित और चारू उक्तियों के द्वारा विचित्र कथा को ग्रथित करना चाहिए।

इकाई– 02 तृतीय प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 तृतीय प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या

2.3 संभावित प्रश्न एवं उत्तर

2.4 उपयोगी पुस्तकों की सूची

2.1 उद्देश्य

दशरूपक के तृतीय प्रकाश में रूपक के भेदों का लक्षण एवं उदाहरण सहित विवेचन किया गया है साथ ही रूपक के भेदों में वसतु, नेता, रस का पृथक – पृथक क्या उपयोग है, यह भी बतलाया गया है। यहाँ उन्हीं लक्षणों और उदाहरणों की व्याख्या की जा रही है।

2.2 तृतीय प्रकाश की कारिकाओं की व्याख्या

अर्थ – प्रथमतः नाटक के विषय में कहा जाता है, क्योंकि नाटक अन्य सभी रूपकों की प्रकृति (मूल) है, इसमें सभी रसों का आश्रय लिया जाता है, इसमें रूपक के सम्पूर्ण लक्षण होते हैं। नाटक के सभी धर्म बतलाये गये हैं और प्रकरणादि के सभी धर्म नहीं बताये गये हैं अतः नाटक सभी प्रकरणादि की प्रकृति है।

प्रकृतित्वादथान्येषां भूयो रसपरिग्रहात्।

सम्पूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते।। 1 ।।

2..2.1 नाटक –

पूर्वरङ्ग विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते।

प्रविश्य तद्वदपरः काव्यमास्थापयेन्नटः।। 2 ।।

अर्थ – आरम्भ में पूर्वरङ्ग का कार्य करके सूत्रधार चला जाता है, तत्पश्चात् उसी के जैसा दूसरा नट प्रवेश करके काव्य की स्थापना करता है। जिसमें पहले सामाजिकों का अनुरञ्चन किया जाता है, वह पूर्वरङ्ग कहलाता है अर्थात् कहलाता है अर्थात् रङ्गशाला। उस नाट्यशाला में जो (अभिनय सम्बन्धी) प्रथम प्रयोग व्युत्थापन इत्यादि किया जाता है वह भी पूर्वरङ्ग कहलाता है। – "पूर्वं रज्यतेऽस्मिन्निति पूर्वरङ्गः।"

नट – अभिनेता, सूत्रधार – नाट्य अनुष्ठान को जो धारण करता है।

दिव्यमर्त्ये स तद्रूपो मिश्रमन्यतरस्तयोः।

सूचयेद्वस्तु बीजं वा मुखं पात्रमथापि वा।। 3 ।।

अर्थ – वह दिव्य और मर्त्य वस्तु (या बीजमुख या पात्र) को उस (देव और मनुष्य) के ही रूप में होकर तथा मिश्रित वस्तु को उनमें से किसी एक पात्र के रूप में होकर सूचित करे।

विशेष–मर्त्य–मनुष्य, मिश्रम् – मिला होना।

वस्तु की सूचना–जैसे उदात्तराघव में दी गयी है –

रामो मूर्ध्नि निधाय काननमगान्मालामिवाज्ञां गुरो –

स्तद्भक्त्या भरतेन राज्यमखिलं मात्रा सहैवोज्झितम्।

तौ सुग्रीवविभीषणावनुगतौ नीतौ परां संपदं

प्रोद्वृत्ता दशकन्धरप्रभृतयो ध्वस्ताः समस्ता द्विषः।।

इस पद्य में नाटक के सम्पूर्ण वस्तु की सूचना दी गयी है।

बीज की सूचना–यथा रत्नावली में दी गयी है –

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्।

आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः।।

अर्थ – अनुकूल दैव दूसरे द्वीप से भी, सागर के मध्य से भी, दिशाओं के अन्त से भी अभीष्ट वस्तु को लागर शीघ्र मिला देता है।

विशेष – द्वीप – जल के मध्य सूखी जगह, घटयति – मिला देना, अभिमुखीभूतः – अनुकूल हुआ।

यहाँ रत्नावली की प्राप्ति रूप फल का बीज है – अनुकूल दैव से युक्त यौगन्धरायण का प्रयत्न जिसकी सूचना दी गयी।

आसादितप्रगटनिर्मलचन्द्रहासः।

प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तः।

उत्खाय गाढतमसं धनकालमुग्रं

रामो दशास्यमिव सम्भृतबन्धुजीवः।।

अर्थ – जिसे उज्जवल और निर्मल चन्द्रहास (चन्द्रमा की चन्द्रिका, चन्द्रहास नामक रावण की तलवार) प्राप्त हो गया है, जो शुद्ध कान्ति वाला है तथा जिसने बन्धुजीव (दोपहरिया कु पुष्प, बन्धुओं का जीवन) को धारण किया है, ऐसा यह राय सदृश शरद का समय गाढ अन्धकार वाले (रावण के पक्ष में – अत्यधिक अज्ञानान्धकार वाले) उग्र (प्रचण्ड, भयङ्कर) रावण सदृश वर्षाकाल को नष्ट करके आ रहा है।

पात्र की सूचना – जैसी शाकुन्तलं में दी गई है –

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभंहृतः।

एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गणातिरंहसा।।

अर्थ – शकुन्तला नाटक में नदी से नट कहता है – मनका हरण करने वाले तुम्हारे गीत राग के द्वारा मैं उसी प्रकार बलपूर्वक आकृष्ट हो गया हूँ जिस प्रकार अत्यन्त वेग वाले हरिण के द्वारा यह राजा दुष्यन्त।

रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः काव्यार्थसूचकैः।

ऋतुं कञ्चिदुपादाय भारतीं वृत्तिमाश्रयेत्।। 4।।

अर्थ – (स्थापक) काव्यार्थ को सूचित करने वाले मधुर श्लोकों के द्वारा रङ्ग (रङ्ग में स्थित सामाजिक) को प्रसन्न करके किसी ऋतु का प्रसङ्ग लेकर भारती वृत्ति का आश्रयण करें।

उदाहरण यथा रत्नावली में –

औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्तमाना ह्रिया

तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः।

दृष्ट्वाऽग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे सङ्गमे

संरोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवा पातु वः।।

अर्थ – प्रथम मिलन के अवसर पर उत्सुकता के कारण शीघ्रता करती हुई, सहज लज्जा के कारण लौटती हुई, पुनः परिवार की स्त्रियों के अनेक वचनों से समक्ष लाई गयी, पति को समक्ष देखकर भय तथा आनन्द का अनुभव करती हुई तथा रोमाञ्चित हुई, किन्तु हसते हुए शिव द्वारा आलिङ्गित वह पार्वती आपका कल्याण करें।

यहाँ काव्यार्थ को प्रस्तुत करते हुए सामाजिकों को प्रसन्न किया गया है तथा भारती वृत्ति का आश्रय लिया गया है।

भारती वृत्ति –

भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः।

भेदैः प्ररोचनायुक्तर्वीथीप्रहसनामुखैः।। 5 ।।

अर्थ – नट द्वारा किया गया वाचिक व्यापार जो संस्कृत भाषा में होता है, भारती वृत्ति कहलाता है – यह प्ररोजचना वीथी, प्रहसन और आमुख (चार) अङ्गों से युक्त होता है। यह पुरुषों के द्वारा प्रयोग की जाती है।

प्ररोचना –

उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना।।

अर्थ – प्रशंसा के द्वारा श्रोताओं को उन्मुख करना प्रयोजचना कहलाता है। प्रस्तुत काव्यार्थ की प्रशंसा करके दर्शकों की या श्रोताओं की प्रवृत्ति को उस ओर आकर्षित किया जाता है। यथा रत्नावली नाटिका में – प्रथम अङ्ग में –

श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी।

लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम्।

वस्त्वेकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुन –

र्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः।।

अर्थ – श्रीहर्ष (नाटिका के कर्ता) निपुण कवि हैं यह सभा भी गुणों की पारखी है। लोक में वत्सराज का चरित आकर्षक माना जाता है, हम सब (प्रस्तुतकर्ता) भी अभिनय में दक्ष हैं। इसमें से एक–एक वस्तु भी वाञ्छित फल प्राप्ति का निमित्त हो सकता है, किन्तु मेरे भाग्योत्कर्ष से गुणों का समूह यहाँ (नाटिका) एकत्र हो गया है।

विशेष – गुणग्रहिणी – गुण का ग्रहण करने वाली, वाञ्छितफल – इच्छित फल,

समुदितः – उदित हो जाना, भाग्योपचयाद् – भाग्योपदय।

वीथी – प्रहसन –

वीथी प्रहसनं चापि स्वप्रसङ्गऽभिधास्यते।। 6।।

वीथ्यङ्गान्यामुखाङ्गत्वादुच्यन्तेऽत्रैव तत्पुनः।

अर्थ – वीथी एवं प्रहसन का इनके प्रकरण में वर्णन किया जायेगा किन्तु वीथी के अङ्गों का यही वर्णन किया जायेगा क्योंकि वीथी के अङ्ग आमुख के भी अङ्ग होते हैं।

आमुख –

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम्।

स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्तया यत्तदामुखम्।। 7 ।।

अर्थ – विचित्र उक्ति द्वारा नटी, पारिपार्श्विक या विदूषक को प्रस्तुत अर्थ का आपेक्ष करने वाला अपना कार्य बतलाता है, वह आमुख या प्रस्तावना कहलाती है

तत्र स्युः कथोद्घातः प्रवृत्तकम्।। 8 ।।

प्रयोगातिशयश्चाथ वीथ्यङ्गानि त्रयोदश ।

इस आमुख या प्रस्तावना में कथोद्घात, प्रवृत्तक, प्रयोगातिशय और वीथी में होने वाले 13 अङ्ग होते हैं।

विशेष – मार्षं – पारिपार्श्विक या एक पात्र का नाम, चित्रोक्तया – चित्र विचित्र उक्ति

(i) **कथोद्घात –**

स्वेतिवृत्तसमं वाक्यमर्थं वा यत्र सूत्रिणः।

गृहीत्वा प्रविशेत्पात्रं कथोद्घातो द्विधैव सः।।

अर्थ – जहाँ पात्र अपनी कथावस्तु से समानता रखने वाले सूत्रधार के वाक्य या वाक्यार्थ को लेकर (रंगमंच पर) प्रवेश करता है। यह कथोद्घात दो प्रकार का होता है –

वाक्य को लेकर – जैसे रत्नावली में सूत्रधार "द्विपादन्यस्मादपि" के इस वाक्य को बोलता हुआ यौगन्धरायण मञ्च पर प्रविष्ट हो जाता है।

वाक्यार्थ को लेकर – जैसे वेणीसंहार में सूत्रधार कहता है –

निर्वाणवैरिदहनाः प्रशमादरीणां नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह केशवेन।

रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः।।

अर्थ – शत्रुओं के शान्त हो जाने से जिनकी शत्रु रूपी अग्नि बुझ गयी है, वे पाण्डुपुत्र श्रीकृष्णा सहित आनन्द करें और जिन्होंने पृथ्वी को प्रसन्न तथा अलङ्कृत कर दिया है, झगड़ों को भी शान्त कर दिया है, वे कुरुराज के पुत्र भृत्यों सहित स्वस्थ रहें।

इसके अर्थ को लेकर भीम यह कहते हुए मञ्च पर प्रविष्ट होता है –

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य।

आकृष्टपाण्डववधूपरिधानकेशाः स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः।

(ii) प्रवृत्तक –

कालसाम्यसमाक्षिप्तप्रवेशः स्यात्प्रवृत्तकम्।। 10।।

अर्थ – जहाँ काल (किसी ऋतु) के वर्णन की समानता के द्वारा (श्लेव द्वारा) पात्र का प्रवेश सूचित किया जाता है। वहाँ प्रवृत्तक नामक आमुख अङ्ग होता है जैसे –

आसादित प्रगटनिर्मलचन्द्रहासः।
प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तः।
उत्खाय गाढतमसं धनाकालमुग्रं
रामो दशास्यमिव सम्भृतबन्धुजीवः।।

(iii) प्रयोगातिशय –

एषोऽयमित्युपक्षेपात्सूत्रधारप्रयोगतः।

पात्रप्रवेशो यत्रैव प्रयोगातिशयो मतः।। 11।।

अर्थ – 'यह वह है' इस प्रकार के सूत्रधार द्वारा कहे गये वाक्य से सूचित होकर जहाँ मंचपर पात्र का प्रवेश होता है, वहाँ प्रयोगातिशय नामक आमुखाङ्ग होता है।

जैसे – अभिज्ञान शाकुन्तल में यह राजा दुष्यन्त के सदृश है – 'एष राजेव दुष्यन्तः' इस सूत्रधार के वाक्य के साथ दुष्यन्त का मंच पर प्रवेश होता है।

वीथी के अङ्ग –

उद्घात्यकावलगित प्रपञ्चत्रिगते छलम्।

वाक्केल्यधिबले गण्डमवस्यन्दितनालिके।। 12।।

असत्प्रलापव्याहारमृद्वानि त्रयोदश।

अर्थ – उदघात्यक, अवलगित, प्रपञ्च, त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिबल, गण्ड, अवस्यन्दित, नलिका, असत्प्रलाप, व्यवहार तथा मृदव – ये 13 वीथी के अङ्ग होते हैं।

(i) उद्घात्यक –

गूढार्थपदपर्यायमाला प्रश्नोत्तरस्य वा।। 13।।

यत्रान्योन्यं समालापो द्वेधोपद्यात्यं तदुच्यते।।

अर्थ – जहाँ दो पात्रों की परस्पर वार्ता या तो गूढ अर्थ वाले पदों तथा उनके पर्यायवाची शब्दों की माला के रूप में होती है अथवा दोनों पात्रों की प्रश्न एवं उत्तर के रूप में होती है – वहाँ उद्घात्यक होता है। उद्घात्यक दो प्रकार का होता है –

(1) गूढार्थ पदों या उनके पर्यायवाचियों की माला–रूप में जैसे – विक्रमोर्वशीयम् नाटक में राजा 'काम' के विषय में गूढार्थ पदों का प्रयोग कर पुनश्च उसकी व्याख्या करता है।

विदूषक – 'भो वयस्य ! क एष कमो येन त्वमपि दूयसे ? स किं पुरुषों अथवा स्त्रीति।'

राजा – सखे

मनोजातिरनाधीना सुखेष्वेव प्रवर्त्तते।

स्नेहस्य ललितो मार्गः काम इत्यभिधीयते।।

विदूषकः – एवमपि न जानामि। राजा – वयस्य। इच्छाप्रभवः स इति। विदूषकः – किं यो यदिच्छति स तत्कामयतीति।

राजा – अथ किम ! विदूषकः – तत्ज्ञातं यथाऽहं रूपकारशालायां भोजनामिच्छामि।।

(2) प्रश्नों या उत्तरो की माला रूप – जैसे पाण्डवानन्ड में –

का श्लाध्या गुणिनां क्षमा परिभवः को यः स्वकुल्यैः कृत
किं दुखं परसंश्रया जगति कः श्लाघ्यो य आश्रीयते।।
को मृत्युर्व्यसनं शुचं जहति के यैर्निर्जिताः शत्रवः।
कैर्विज्ञातमिदं विराटनगरे छन्नस्थितैः पाण्डवैः।।

अर्थ – प्रशंसनीय क्या है ? गुणीजनों द्वारा की जाने वाली क्षमा। तिरस्कार क्या है ? जो अपने ही कुल जनों द्वारा किया जाता है। दुःख क्या है ? दूसरे का आश्रय ग्रहण करना। संसार में प्रशंसनीय कौन है ? जो आर्त (अनाथ) को आश्रय देता है। मृत्यु क्या है ? व्यसन ग्रस्त होना। चिन्तारहित कौन है ? जिन्होंने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली है। यह सब किसने जान लिया है ? विराट नगर में अज्ञात रूप से रहने वाले पाण्डवों ने।

(ii) अवलगित –

यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते।

प्रस्तुतेऽन्यत्र वान्यत्स्यात्तच्चावलगितं द्विधा।। 14।।

अर्थ – जहाँ एक ही क्रिया के द्वारा एक कार्य के समावेश से अन्य कार्य सम्पादित हो जाये, वहाँ प्रथम प्रकार का अवलगित होता है। 2. अथवा जहाँ एक कार्य के प्रस्तुत होने पर दूसरा कार्य सिद्ध हो जाता है – वहाँ दूसरे प्रकार का अवलगित होता है। इसमें से प्रथम प्रकार का अवलगित का उदाहरण उत्तररामचरित से दिया जा सकता है – गर्भवती सीता के मन में वन विहार की इच्छा उत्पन्न हाने पर सीता के दोहद रूप कार्य को पूर्ण करने के बहाने से लोकनिन्दा के कारण सीता को वन में छोड़ देना। इस प्रकार के अवलगित का उदाहरण छलितराम नाटक में प्राप्त होता है। – राम – हे लक्ष्मण! पिता से वियुक्त अयोध्या में मैं विमान पर बैठकर नहीं प्रवेश कर सकता हूँ, अतः विमान से उतरकर जाता हूँ –

कोऽपि सिंहासनस्थः स्थितः पादुकयोः पुरः।

जटावानक्षमाली च चामरी च विराजते।।

अर्थ – (अरे सामने तो) राज्य सिंहासन के नीचे पादुकाओं के सामने जटाधारी अक्षमाला को धारण किया हुआ और चामर युक्त व्यक्ति स्थित है। इस प्रकार भरत दर्शन रूप कार्य की सिद्धि हो जाती है।

(iii) प्रपञ्च –

असद्भूतं मिथः स्तोत्रं प्रपञ्चो हास्यकृन्मतः।

अर्थ – परस्पर की हास्ययुक्त मिथ्यास्तुति को प्रपञ्च कहते हैं। जैसे कर्पूर मञ्चरी में –

भैरवानन्द –

रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा मद्यं मांसं पीयते खाद्यते च।

भिक्षा योज्यं चर्मखण्डं च शय्या कौलो धर्मः कस्य न भवति रम्यः।।

(iv) त्रिगत –

श्रुतिसाम्यादनेकार्थयोजनं त्रिगतं त्विह।

नटादित्रितयालापः पूर्वरङ्ग तदिष्यते।। 16।।

अर्थ – शब्दों की समानता के कारण अनेक अर्थों की कल्पना करना 'त्रिगत' कहलाता है। नटादि (सूत्रधार, नटी – पारिवार्श्विक) तीनों के वार्तालाप को भी 'त्रिगत' कहते हैं। यह त्रिगत पूर्वरङ्ग में ही अङ्ग रूप में उपयुक्त है। जैसे – विक्रमोर्वशीयम में –

विशेष – इष्यते – उपयुक्त होना, आलापः – वार्ता।

मत्तानां कुसुमरसेन षट्पदानां

शब्दोऽयं परभृतनाद एष धीरः।

कैलासे सुरगणसेविते समन्तात्

किन्नर्यः कलमधुराक्षरं प्रगीताः।।

(v) छलनम् –

प्रियाभैरप्रियैर्वाक्यैर्विलोभ्य छलनाच्छलम्।।

अर्थ – ऊपर से प्रिय लगने वाले किन्तु अप्रिय वाक्यों के द्वारा लुभाकर छलने का नाम 'छलन' है। जैसे – वेणीसंहार में – भमसेन अर्जुन दुर्योधन का शोध करते हैं जो वस्तुतः अप्रिय है किन्तु ऊपर से प्रियलगता है –

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी।

राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रम्।।

कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनपटुः पाण्डवा यस्य दासाः।

क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत पुरुषा द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः।।

(vi) वाक्केली –

विनिवृत्यास्य वाक्केली द्विस्त्रिः प्रत्युक्तितोऽपि वा।

व्याख्या – प्रकरण प्राप्त अथवा प्रारम्भ किये हुए वाक्य को कहते कहते रूक जाना अथवा उसे बदल देना 'वाक्केली' कहलाता है। जैसे – उत्तररामचरित में – राम वासन्ती से कहते हैं –

त्वं जीवितं त्वमसि में हृदयं द्वितीयं

त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्ग।

इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां

तामेव शान्तमथवा किमतः परेण।।

(vii) अधिबल –

अन्योन्यवाक्याधिक्योक्तिः स्पर्धयाऽधिबलं भवेत्।।

अर्थ – जहाँ नाटकीय पात्र परस्पर वार्ता करते हुए स्पर्धावश अपने अपने आधिक्य वचन (बखान) कहे, उसे अधिबल कहते हैं। जैसे वेणीसंहार में अर्जुन अपना परिचय देते हुए कहते हैं –

विशेष – स्पर्धया – स्पर्धा के कारण

अर्जुन –

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते

तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः।

रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य

प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डुपुत्रः।

राजा – अरे ! नाहं भवानिव विकत्थनाप्रगल्भः। किन्तु –

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे

मद्गदाभिन्नवक्षोस्थिवेणिकाभङ्गभीषणम्।

यहाँ भीम – दुर्योधन की परस्पर बढ़ी चढ़ी बाते प्रदर्शित की जाने से यहाँ अधिबल है।

(viii) गण्ड –

गण्डः प्रस्तुतसम्बन्धिभिन्नार्थं सहसोदितन्।। 18।।

अर्थ – प्रस्तुत विषय से सम्बद्ध किन्तु प्रकृत से भिन्न अर्थ का बोधक अकस्मात् कहा गया वाक्य 'गण्ड' कहलाता है।

विशेष – भिन्नार्थं – भिन्न अर्थ को

जैसे – उत्तररामचरित में –

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयो –

रसावस्याः स्पर्शो वपुषि वहलश्चन्दनरसः।

अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः

किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।।

(प्रविश्य) प्रतीहारी – "देव उपस्थितः"। रामः – अयि कः ?

प्रतिहारी – "देवस्यासन्न परिचारको दुर्मुख" ! इति।

राम के कथन – "विरह असह्य है" में विरह के साथ "विरह उपस्थित हो गया है" – प्रस्तुत अर्थ के साथ मिल जान से 'गण्ड' है।

(ix) अवस्यन्दित –

रसोक्तस्यान्यथा व्याख्या यत्रावस्यन्दितं हि तत्।

अर्थ – जहाँ भावावेश में कहे हुए वचन का दूसरे प्रकार से अर्थ समझा दिया जाता है – वहाँ अवस्यन्दित वीथ्यङ्ग होता है।

विशेष – अन्यथा – दूसरे प्रकार का अर्थ

जैसे – छलितराम में –

सीता – जात ! कल्यं खलु युवाभ्यामयोध्यायां गन्तव्यम् तर्हि स राजा विनयेन नमितव्यः। लवः – अम्ब किमावाभ्यां राजोपजीविभ्यां भवितव्यम् ? सीता – जात स खलु युवयोः पिता। लवः – किमावयोः रघुपतिः पिता ? सीता – (साशङ्कम्) – जात न खलु परं युवयोः। सकलाया एव पृथिव्याः – इति।

(x) नलिका –

सोपहासा निगूढार्था नालिकैव प्रहेलिका।। 19।।

अर्थ – हास्य युक्त निगूढार्थ वाली पहेली को ही नालिका कहा जाता है। जैसे मुद्राराक्षस में –

विशेष : सोपहासा – उपहास युक्त वचन, निगूढार्थ – गहराई से छिपे अर्थ को

चरः – हं हो ब्राह्मण मा कुप्य। किमपि तवोपाध्यायो जानाति। किमप्यस्मादृशा जना जानाति। शिष्यः – किमस्मदुपाध्यायस्य सर्वज्ञत्वमपहर्तुमिच्दसि। चरः – यदि त उपाध्यायः सर्वं जानाति तज्जानातु तावत् कस्य चन्द्रोऽनभिप्रेत इति। शिष्यः – किमनेन ज्ञातेन भवति। चाणक्यः – चन्द्रगुप्तादपरक्तान्पुरुषाञ्जानाति।

(xi) असत्प्रलाप –

असम्बद्धकथाप्रायोऽसत्प्रलापो यथोत्तरः।

अर्थ – जहाँ एक के बाद दूसरी असम्बद्ध बात कही जाती है – वहाँ 'असत्प्रलाप' होता है।

विशेष : असत्प्रलापो – असम्बद्ध बात

जैसे विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी के वियोग में उन्मत्त पुरुरवा का यह प्रलाप –

हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिस्तस्यास्त्वया हृता।

विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते।।

(xii) व्याहार–

अन्यार्थमेव व्याहारो हास्यलोभकरं वचः।। 20।।

अर्थ – जिस वचन का प्रयोजन कुछ और ही होता है, ऐसे हास्य के लोभ को उत्पन्न करने वाला वचन 'व्याहार' कहलाता है। जैसे – मालविकाग्नि मित्र में मालविका के द्वारा लास्य के प्रदर्शन किये जाने के पश्चात् वह जाना चाहत है। इस पर विदूषक कहता है – मा तावत् ! उपदेश शुद्धा गमिष्यसि।

गणदासः – (विदूषकं प्रति) आर्य उच्यतां यस्त्वया क्रमभेदो लक्षितः। विदूषकः – प्रथमं प्रत्यूषे ब्राह्मणस्य पूजा भवति। स तया लङ्घिता।

(xiii) मृदव –

दोषा गुणा गुणा दोषा यत्र स्युर्मृदवं हि तत्।।

अर्थ – जहाँ दोष को गुण एवं गुण को दोष रूप में प्रदर्शित किया जाय अथवा गुण दोष या दोष गुण का व्यत्यय हो वह 'मृदव' होता है। जैसे – अभिज्ञान शाकुन्तल में –

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः

सत्त्वानामुपलक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।।

उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले।

मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः।।

एषामन्यतमेनार्थ पात्रं वाक्षिप्य सूत्रभृत्।

प्रस्तावनान्ते निर्गच्छेत्ततो वस्तु प्रपञ्चयेत्।। 21।।

अर्थ – सूत्रधार इन (प्ररोचना, वीथी, प्रहसन तथा आमुखादि) में से किसी एक के द्वारा कथावस्तु तथा पात्र की सूचना देकर प्रस्तावना के अन्त में बाहर चला जाय तथा उसके पश्चात् नाटक की कथावस्तु के अभिनय का प्रपञ्च (प्रस्तुतीकरण) करे।

विशेष : आक्षिप्य – लेकर, निर्गच्छेत् – बाहर चले जाना।

अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान्।

कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः।। 22।।

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः।

तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम्।। 23।।

अर्थ – जिस कथा वस्तु में उत्कृष्ट (अधिगम्य = रमणीय सेवन करने वाला) गुणों से युक्त धीरोदात्त, प्रतापशाली कीर्ति का इच्छुक, अत्यन्त उत्साही, तीनों वेदों का रक्षक, पृथ्वी का पालक, प्रसिद्ध वंश वाला कोई राजर्षि अथवा दिव्य जन नायक हो, ऐसे इतिहास प्रसिद्ध इतिवृत्त की आधिकारिक कथावस्तु, बनाना चाहिये।

यत्तत्रानुचितं किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा।। 24।।

विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्।

अर्थ – उस इतिवृत्त में जो कुछ नायक के लिए अनुचित हो या रस के विरुद्ध हो, उसे छोड़ देना चाहिए अथवा उसकी अन्य रूप में कल्पना कर लेनी चाहिये। जैसे – मायुराज ने 'उदात्त राघव' नामक नाटक में छल से बालिवध की घटना को छोड़ दिया है। महावीरचरित में (भवभूति के) रावण की मित्रतावश बाली राम के वध के लिए आता है और राम उसका वध कर देते हैं। उक्त दोनों नाटकों में कथा को ही अन्यथा करके परिवर्तित कर दिया गया है।

आद्यन्तमेवं निश्चित्य पञ्चधा तद्विभज्य च।। 25।।

खण्डशः सन्धिसंज्ञांश्च विभागानपि खण्डयेत्।

चतुःषष्टिस्तु तानि स्युरङ्गानीति –

अर्थ – नाटककार उस प्रसिद्ध कथानक के आदि और अन्त का निश्चय करके, उस कथानक को पांच भागों (सन्धि नामक) में विभक्त करके, पुनश्च उन पाँच भागों को भी खण्डो (सन्यङ्गों) में

विभक्त करें। इस प्रकार उस आधिकारिक कथावस्तु के चौंसठ अङ्ग हो जाते हैं।

अपरं तथा।। 26।।

पताकावृत्तमप्यूनमेकाद्यैरनुसन्धिभिः।

अङ्गान्यत्र यथालाभमसन्धिं प्रकरीं न्यसेत्।। 27।।

अर्थ – दूसरे प्रकार के पताका नामक प्रासंगिक इतिवृत्त में प्रधान इतिवृत्त से भिन्न एक, दो आदि अनुसंधियों की न्यूनता रखनी चाहिए और इसमें यथावश्यक रूप में सन्ध्यङ्गों का समावेश करना चाहिए। किन्तु प्रकरी में सन्धि निवेश नहीं होना चाहिए अर्थात् इसे सन्धिरहित होना चाहिए।

आदौ विष्कम्भकं कुर्यादङ्कं वा कार्ययुक्तितः।

अर्थ – आरम्भ में नाटककार कार्य के औचित्यानुसार विष्कम्भक, एवं अङ्क की रचना करे।

अपेक्षितं परित्यज्य नीरसं वस्तुविस्तरम्।। 28।।

यदासन्दर्शयेच्छेषं कुर्याद्विष्कम्भकं तदा।

यदा तु सरसं वस्तु मूलादेव प्रवर्तते।। 29।।

आदावेव तदाङ्कः स्यादामुखाक्षेपसंश्रयः।

अर्थ – अङ्क में प्रदर्शित करने योग्य आवश्यक भाग को छोड़कर इतिवृत्त का शेष नीरस भाग या नाट्यशास्त्र द्वारा निषिद्ध भाग को – यदि प्रदर्शित करना हो तो नाटक के प्रारम्भ में विष्कम्भक का विधान करना चाहिए।

किन्तु जब आरम्भ से ही कथावस्तु सरस होती है तब तो आदि में ही अङ्क का विधान करना चाहिये और उस अङ्क का आधार आमुख में सूचित पात्र–प्रवेश हुआ करता है।

प्रत्यक्षनेतृचरितो बिन्दु व्याप्तिपुरस्कृतः।। 30।।

अङ्को नानाप्रकारार्थसंविधानरसाश्रयः।।

अर्थ – जिसमें नायक का चरित प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया जाता है, जो बिन्दु की व्याप्ति से युक्त होता है और अनेक प्रकार के प्रयोजन संविधान तथा रसों का आश्रय होता है – वह अङ्क होता है।

अनुभावविभावाभ्यां स्थायिना व्यभिचारिभिः।। 31।।

गृहीतमुक्तैः कर्त्तव्यमङ्गिनः परिपोषणम्।।

अर्थ – अनुभाव, विभाव, स्थायीभाव तथा व्यभिचारी भावों का ग्रहण करते हुए तथा छोड़ते हुए उनके द्वारा अङ्गी रस का परिपोषण करना चाहिए।

विशेष : स्थायीभाव – सहृदय के चित्त में स्थायी रूप से रहने वाले इत्यादि। अनुभाव – रसोत्पत्ति के पश्चात् होने वाला आङ्गिक विकार। विभाव – रसोत्पत्ति के कारण को विभाव कहते हैं। व्यभिचारी – क्षणभङ्गुर वे भाव जो रसोत्पत्ति के पश्चात् सहृदय के चित्त में उत्पन्न एवं विलीन होते रहते हैं।

न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत्।। 32।।

रसं वा न तिरोदध्याद्वस्त्वलङ्कारलक्षणैः।।

अर्थ – अत्यधिक रस पोषण द्वारा कथावस्तु को अत्यन्त विच्छिन्न नहीं कर देना चाहिये। और न

ही वस्तु अलङ्कार तथा लक्षणों के द्वारा रस को तिरोहित कर देना चाहिए।

विशेषः विच्छिन्नतां – अलगाव को, तिरोदधत् – तिरोहित होना, छिपना।

एको रसोऽङ्गीकर्त्तव्यो वीरः शृंगार एव वा।। 33।।

अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम्।।

अर्थ – नाटक में एक रस वीर अथवा क्षृंगार को अङ्गी (मुख्य) रखना चाहिए, अन्य सभी रसों को अङ्ग रस रूप में और निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस रखना चाहिये।

दूराध्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम्।। 34।।

संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम्।।

अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत्।। 35।।

अङ्केनैवोपनिबध्नीत, प्रवेशकादिभिरेव सूचयेदित्यर्थः ।

नाधिकारिवधं क्वापि त्याज्यमावश्यकं न च।।

अर्थ – दूर की यात्रा, वध, युद्ध, राज्य–विप्लव, देश–विप्लव आदि, घेरा डालना (संरोध), भोजन, स्नान, रतिक्रिड़ा, अनुलेपन,वस्त्रग्रहण आदि को प्रत्यक्ष रूप में नहीं दिखलाना चाहिये। अधिकारी नायक के वध का कहीं भी निर्देश न करना चाहिए और आवश्यक वस्तु का त्याग न करना चाहिये।

विशेष – अध्वान – मार्ग, विप्लव – उपद्रव, संरोध – घेरा डालना

अङ्को के इतिवृत्त एवं पात्र

एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम्।। 36।।

पात्रैस्त्रिचतुरैङ्कं तेषामन्तेऽस्य निर्गमः।

अर्थ – इस प्रकार नाटककार को ऐसा अङ्क रखना चाहिये जो एक प्रयोजन के लिए किये गये एक दिन के कार्यो से युक्त हो, जिसमें नायक उपस्थित हो, जो मात्र तीन या चार पात्रों से युक्त हो और उन पात्रों का अन्त में (रङ्गमञ्च से) निकल जाना दिखला दिया जाये। यदि कार्य दिन के अन्त तक समाप्त न हो पाए तो अङ्कच्छेद करके अर्थोपक्षेपक द्वारा उसका विधान करना चाहिए।

विशेष : निगर्म – बाहर निकलना

पताकास्थानकान्यत्र बिन्दुरन्ते च बीजवत्।। 37।।

एकमङ्काः प्रकर्त्तव्याः प्रवेशादिपुरस्कृताः

पञ्चाङ्कमेतदवरं दशाङ्कं नाटकं परम्।। 38।।

अर्थ – (अङ्क में) इसमें पताकास्थानक का यथोचित सन्निवेश होना चाहिए। अन्त में बीज के समान ही बिन्दु को रखा जाना चाहिए। इस प्रकार पात्र प्रवेशादि तथा निष्क्रमण कराते हुए अङ्कों की रचना करनी चाहिए। नाटक में कम से कम पांच अङ्कों का तथा अधिक से अधिक दस अङ्कों की योजना होनी चाहिये।

विशेष : पुरस्कृता – युक्त साथ

इस प्रकार तृतीय प्रकाश में नाटक का लक्षण बताया गया है।

2.2.2 प्रकरण

अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम्।

अमात्यविप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम्।। 39।।

धीरप्रशान्तं सापायं धर्मकामार्थतत्परम्।।

शेषं नाटकवत्सन्धिप्रवेशकरसादिकम्।। 40।।

अर्थ – प्रकरण का इतिवृत्त कवि बुद्धि कल्पित तथा लोक संश्रय अर्थात सर्वस्वधारण जन के जीवन पर आधारित होता है। मन्त्री, ब्राह्मण एवं वणिक में से कोई एक नायक होता है जो धीरप्रशान्त कोटि का होता हैं इसे विध्न बाधाओं से संघर्ष करते हुए धर्मार्थ काम (त्रिवर्ग) में तत्पर होना चाहिये। प्रकरण में सन्धि, प्रवेशक तथा रसादि का सन्निवेश नाटक के समान होता है।

विशेष : सापायं – उपाय सहित, लोक संश्रयम् – लोक पर आश्रित

नायिका तु द्विधा नेतुः कुलस्त्री गणिका तथा।

क्वचिदेकैव कुलजा वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित्।। 41।।

कुलजाभ्यन्तरा, बाह्या वेश्या, नातिक्रमोऽनयोः।

आभि; प्रकरणं त्रेधा, संकीर्णं धूर्तसंकुलम्।। 42।।

अर्थ – प्रकरण में नायक की नायिका दो प्रकार की होती है – कुलीन नारी तथा गणिका। किसी प्रकरण में अकेली कुलीन नारी ही होती है, किसी में अकेली वेश्या और किसी में कुलीन नारी एवं वेश्या दोनों ही (संकीर्ण) नायिकायें होती हैं। इनमें कुलीन नारी अभ्यन्तर और वेश्या वाह्य नायिका होती है। इनका व्यतिक्रम नहीं होता। इन तीन प्रकार की नायिकाओं के द्वारा प्रकरण भी तीन प्रकार का हो जाता है। उक्त तीन प्रकारों में जो संकीर्ण प्रकरण है वह धूर्त पात्रों (जुआरी, शकारादि) से युक्त होता है।

विशेष : संकुलम् – भरा हुआ, अभ्यन्तरा – अन्तःपुर में, नातिक्रम – अतिक्रमण न करना।

वेश का अर्थ है भृति (भरण–पोषण)। यह वेश ही इसका जीवन है अतः वह वेश्या कहलाती है। वेश्या का एक भेद ही गणिका है। जैसे तरङ्गदत्त नामक प्रकरण में केवल वेश्या ही नायिका है। पुष्पदूषितक में कुलीन नारी मृच्छकटिकम् में दोनों प्रकार की नायिकाओं की योजना की गयी है। मृच्छकटिकम् संकीर्ण प्रकरण है जो कितव, जुआरी आदि धूर्त पात्रों से युक्त है।

2.2.3 नाटिका –

लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र संकीर्णान्यनिवृत्तये।

अर्थ – यहाँ रूपक के अन्य संकीर्ण भेदों की निवृत्ति के लिए नाटिका का भी लक्षण किया जा रहा है। कुछ व्याख्याकार रूपक के संकीर्ण भेदों में प्रकरणिका को भी मानते हैं किन्तु धनंजय केवल नाटिका को ही स्वीकार करते हैं।

विशेष : निवृत्तये – अलग करने के लिए, अङ्गी – प्रधान

नाटक एवं प्रकरण का मिश्रण – नाटिका

तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः।। 43।।

प्रख्यातो धीरललितः श्रृंगारोऽङ्गी सलक्षणः।

 अर्थ – नाटिका में प्रकरण से कथावस्तु ली जाती है अर्थात् वह कवि –कल्पित होता है। नायक

नाटक से लिया जाता है। अर्थात् वह राजा होता है, प्रख्यात तथा धीरललित होता है। नाटिका में अपने लक्षणों सहित श्रृंगार रस अङ्गी होता है।

उत्पाद्यतिवृत्तत्वं प्रकरणधर्मः प्रख्यातनृपनाथकादित्वं तु नाटकधर्म इति,

एवं च नाटकप्रकरणनाटिकातिरेकेण वस्त्वादेः प्रकरणिकायामभावादङ्कपात्रभेदात् ।

स्त्रीप्रायचतुरङ्गादिभेदकं यदि चेष्यते।। 44।।

एकद्वित्र्यङ्कपात्रादिभेदेनानन्तरूपता।।

अर्थ – स्त्री पात्रों का बाहुल्य, चार अङ्क होना इत्यादि को यदि प्रकरणिका और नाटिका का भेदक माना जाये, तब तो एक दो या तीन अङ्क तथा पात्र आदि के भेद से रूपकों के अनन्त प्रकार हो जायेगे।

तत्र नाटिकेतिस्त्रीसमाख्ययौचित्यप्राप्तं स्त्रीप्रधानत्वम् कैशिकीवृत्याश्रयत्वाच्च।

तदङ्गसंख्ययाऽल्पावमर्शत्वेन चतुरङ्कत्वम प्यौचित्यप्राप्तमेव।

यहाँ 'नाटिका' इस स्त्रीवाची नाम से तथा नाटिका कैशिकी वृत्ति का आश्रय होती है, इस हेतु से भी नाटिका में स्त्रीपात्रों की प्रधानता मानना उचित हैं नाटिका में अवमर्श संधि के अत्यल्प होने से नाटिका में चार अङ्क होते हैं।

देवीतत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा।। 45।।

गम्भीरा मानिनी कृच्छ्रात्तद्वशान्नेतृसङ्गमः।।

नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा।। 46।।

अन्तःपुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनैः।

अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम्।। 47।।

अर्थ – इस नाटिका में देवी (महारानी) ज्येष्ठा होती है। वह राजवंशोत्पन्ना, गम्भीरा, प्रगल्भा तथा मानिनी होती है। उसके अधीन होने से (नायिका के साथ) नायक का मिलन बड़ी कठिनाई से होता है। नायिका उसी प्रकार की (राजवंशोत्पन्ना) तथा मुग्धा होती है। वह दिव्य गुणों वाली और अत्यधिक मनोहर होती है। अन्तः पुरादि से सम्बन्ध होने के कारण वह (प्राप्या नायिका) नायक के निकट होती है। उसके विषय में सुनकर तथा उसे देखकर नायक का उसके प्रति उत्तरोत्तर नवीन अनुराग होता है।

विशेष : प्रगल्भा – ढीठ स्वभाव की, आसन्न – स्थित रहना, कृच्छ्राद् – कठिनाई से, तदवशात् – उसके कारण।

नेता तत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शङ्कितः।

कैशिक्यङ्गश्चतुर्भिश्च युक्ताङ्कै नाटिका।। 48।।

अर्थ – वह नायक देवी के भय से शङ्कित हुआ उस प्राप्या नायिका की ओर प्रवृत्त हुआ करता है। यह नाटिका जिस प्रकार चार अङ्कों से युक्त होती है, उसी प्रकार कैशिकी वृत्ति के चार अंगों (नर्म, स्फिञ्ज, स्फोट, गर्भ) से युक्त होती है।

विशेष : त्रास – भय, प्रवर्तेत् – प्रवृत्त होना।

2.2.3 भाण

भाणस्तु धूर्तचरितं स्वानुभूतं परेण वा।

यत्रोपवर्णयेदेको निपुणः पण्डितो विटः।। 49।।

सम्बोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः।

सूचयेद्वीरश्रृंगारौ शौर्यसौभाग्यसंस्तवैः।। 50।।

अर्थ – भाण वह रूपक है, जिसमें कोई कुशल एवं बुद्धिमान अपने द्वारा अनुभूत या किसी दूसरे के द्वारा अनुभूत धूर्तचरित का वर्णन करता है, वह आकाशभाषित के द्वारा सम्बोधन एवं उक्ति प्रत्युक्ति करता है, शौर्य के वर्णन द्वारा वीर रस की एवं विलास (सौभाग्य) के वर्णन द्वारा श्रृंगार रस की सूचना देता है।

विशेषः संस्तव – कथन द्वारा, वर्णन द्वारा।

भूयसा भारती वृत्तिरेकाङ्कं वस्तुकल्पितम्।

मुखनिर्वहणे साङ्गे लास्याङ्गानि दशापि च।। 51।।

2.2.3.1 लास्य के अङ्ग –

गेयं पदं स्थितं पाठ्यमासीनं पुष्पगण्डिका।

प्रच्छेदकस्त्रिगूढं च सैन्धवाख्यं द्विगूढकम्।। 52।।

उत्तमोत्तमकं चान्यदुक्तप्रत्युक्तमेव च

लास्ये दशविधं ह्येतदङ्गनिर्देशकल्पनम्।। 53।।

अर्थ – भाण में अधिकतर भारती वृत्तिका प्रयोग होता है, एक अङ्क होता है, कथा कल्पित होती है, अपने अङ्गो सहित मुख और निर्वहण दो सन्धियाँ होती है और लास्य के दश अङ्ग प्रयुक्त होते हैं। लास्य के दश अङ्ग है। – गेयपद, स्थितपाठ, आसीन, पुष्पगण्डिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ़, सैन्धव, द्विगूढक, उत्तमोत्तमक, उक्तप्रत्युक्त। इन दश प्रकार के अङ्गों का लास्य में निर्देश किया गया है। जैस – लीलामधुकर नामक भाण।

विशेष : उक्ति प्रत्युक्ति – कथन–पुनः उत्तर देना।

2.2.4 प्रहसन

तद्वत्प्रहसनं त्रेधा शुद्धवैकृतसङ्करैः।

2.2.4.1 प्रहसन के प्रकार

पाखण्डिविप्रप्रभृतिचेटचेटीविटाकुलम।। 54।।

चेष्टितवेषभाषाभिःशुद्धंहास्यवचोन्वितम्।

पाखण्डी (बौद्ध जैन), विप्र आदि चेट, चेटी और विट से भरा हुआ तथा हास्यपूर्ण वचन से परिपूर्ण वेष और भाषाओं से युक्त पाखण्डी आदि की चेष्टाएँ शुद्ध प्रहसन है।

कामुकादिवचोवेषैः षण्ढकञ्चुकितापसैः।। 55।।

विकृतं

अर्थ – जो कामुकादि की भाषा और वेष को धारण करने वाले नपुंसक, कञ्चुकी तथा तपस्वी पात्रों से युक्त होता है। वह विकृत प्रहसन है। विकृत प्रहसन में कामुक आदि के वेष में नपुंसक आदि उनकी भाषा में उनके चरित्र का अभिनेय करते है।

विशेष : षण्ड – नपुंसक, वैकृत – विकारयुक्त (विकृत), आकुलम् – मरे हुए।

सङ्कराद्वीथ्या संकीर्णं धूर्तसङ्कुलम्।

रसस्तु भूयसा कार्यः षड्विधो हास्य एव तु।। 56।।

अर्थ – वीथी के अङ्गों से मिश्रित तथा धूर्तों से भरा हुआ प्रहसन संकीर्ण कहलाता है। प्रहसन नामक रूप में 6 प्रकार का हास्य प्रचुरता से प्रयुक्त होता है। छः प्रकार का हास्य है – स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित, अतिहसित।

नाट्यशास्त्र में प्रहसन के केवल शुद्ध और सङ्कीर्ण दो ही भेद किये गये हैं।

उदाहरण – धूर्तचरितम्

2.2.5 डिम

डिमेवस्तु प्रसिद्धं स्याद् वृत्तयः कैशिकीं विना।

नेतारो देवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः।। 57।।

भूतप्रेत पिशाचाद्याः षोडशात्यन्मुद्धताः।

रसैरहास्यश्रृंगारैः षडभिर्दीप्तैः समन्वितः।। 58।।

मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादि चेष्टितैः।

चन्द्रसूर्योपरागैश्च न्याय्ये रौद्ररसेऽङ्गिनी।। 59।।

चतुरङ्कश्चतुस्सन्धिर्निर्विमर्शो डिमः स्मृतः।

विशेष : माया – इन्द्र जाल – जादू टोना, दीप्तैः – उत्तेजक, उद्धताः – उद्यत श्रेणी के।

अर्थ – डिम नामक रूपक में कथावस्तु प्रसिद्ध होती है। इसमें कैशिकी को छोड़कर अन्य वृत्तियाँसात्त्वती, आरभटी भारती होती है। देव गन्धर्व, यक्ष, राक्षस महासर्प, भूत, प्रेत पिशाच आदि 16 उद्धत श्रेणी के पात्र होते हैं। यह हास्य और श्रृंगार से भिन्न 6 दीप्त रसों से युक्त होता है। इसमें न्यायपूर्वक रौद्ररस अङ्गी होता है। विमर्श के अतिरिक्त मुख प्रतिमुख, गर्भ और निर्वहण नामक चार संधियाँ अङ्गों सहित होती है तथा इसमें माया – इन्द्रजाल इत्यादि अनुभावों का आश्रय लिया जाता है। शेष प्रस्तावनादि नाटक के समान होते हैं और यह बात भरतमुनि ने त्रिपुरदाह के इतिवृत्त की समानता के द्वारा इस प्रकार दिखलायी है। ब्रह्मा ने यह लक्षण त्रिपुरदाह में बतलाया है, अतः त्रिपुरदाह डिम संज्ञक है।

2.2.6 व्यायोग

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः।। 60।।

हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्डिमवद्रसाः।

अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो जामदग्न्यजये यथा।। 61।।

एकाहाचरितैकाङ्को व्यायोगो बहुभिर्नरैः।

अर्थ – व्यायोग की कथावस्तु प्रसिद्ध होती है, उसमें प्रख्यात तथा उद्धत नायक का आश्रय लिया जाता है। वह गर्भ एवं विमर्श सन्धि से रहित होता है। इसमें डिम समान 6 दीप्त रस हुआ करता है। कैशिकी के अतिरिक्त वृत्तियाँ होती हैं, इसमें ऐसे युद्ध का वर्ण होता है जा स्त्री निमित्त नहीं किया जाता जैसे – 'जामदग्न्यजय' (नामक व्यायोग) में है। उसमें एक दिन के चरित को दिखलोन वाला एक अङ्क होता है। इसमें पुरुष पात्र अधिक होते हैं। जैसे – जामदग्न्यजय।

विशेष : अस्त्रीनिमित्तम् – जिसका कारण स्त्री न हो, उद्धत – उद्धत श्रेणी का नायक, एकाहचरित

– एक दिन की कथा।

समवकार

कार्यं समवकारेऽपि आमुखं नाटकादिवत्।। 62।।

ख्यातं देवासुरं वस्तु निर्विमर्शास्तु सन्धयः।

वृत्तयो मन्दकैशिक्यो नेतारो दैवदानवाः।। 63।।

द्वादशोदात्तविख्याताः फलं तेषां पृथक्पृथक्।

बहुवीररसाः सर्वे यद्वदम्भोधिमन्थने।। 64।।

अङ्कस्त्रिभिस्त्रिकपटस्त्रिश्रृंगारस्त्रिविद्रवः।

द्विसन्धिरङ्कः प्रथमः कार्यो द्वादशनालिकः।। 65।।

चतुर्द्विनालिकावन्त्यौ नालिका घटिकाद्वयम्।

वस्तुस्वभावदैवारिकृताः स्युः कपटास्त्रयः।। 66।।

नगरोपरोधयुद्धं वाताग्न्यादिकविद्रवाः।

धर्मार्थकामैः श्रृंगारो नात्र बिन्दुप्रवेशकौ।। 67।।

वीथ्यङ्गानि यथालाभं कुर्यात्प्रहसने यथा।

अर्थ – समवकार में भी नाटकादि के समान आमुख रखना चाहिए। इसमें देव–असुरों की प्रसिद्ध कथा होती है। विमर्श को छोड़कर अन्य चार सन्धियाँ होती है, कैशिकी की अल्पता के साथ चारों वृत्तियाँ होती हैं। इतिहास–प्रसिद्ध उदात्तप्रकृति के देव एवं दानव बारह नायक होते हैं, उन सबके प्रयोजन भिन्न भिन्न हुआ करते हैं। सभी नायकों में वीर रस की प्रचुरता होती है जैसे कि समुद्रमन्थन (समवकार) में है। यह रूपक तीन अङ्कों का होता है, इसमें तीन कपट, तीन श्रृंगार, तीन विद्रव होते है। प्रथम अङ्क में दो सन्धियाँ (मुख – प्रतिमुख) रखनी चाहिये तथा इसकी कथा 12 नाड़ी (24 घड़ी) की होनी चाहिए, शेष दो अङ्क क्रमशः (द्वितीय) चार नाड़ी तथा (तृतीय) दो नाड़ी का होना चाहिए। एक नाड़ी (नालिका) दो घड़ी की होती है। समवकार में तीन कपट होते हैं – वसतु स्वभावकृत, दैवकृत, अरिकृत। इसमें नगरोपरोध, युद्ध तथा वायु एवं अग्नि आदि द्वारा किये गये विद्रव (उपद्रव) होते हैं। धर्मार्थ काम से युक्त तीन प्रकार का श्रृंगार होता है।

विशेष : त्रिश्रृगार – धर्मार्थकार युक्त श्रृंगार, त्रिविद्रव – उपद्रव अचेतन (वायु आदि) चेतन (हाथी आदि) उभयकृत अनर्थ, नालिका – 2 घड़ी की एक नालिका होती है।

विशेष : नगरोपरोध – नगर का घिराव, विद्रवाः – उपद्रव, त्रिकपट – शत्रुकृत, वायुकृत, वस्तुस्वभाव कृत प्रपञ्च। समवकार में बिन्दु (नामक अर्थप्रकृति) और प्रवेशक (अर्थोपक्षेपक) नहीं होता है। प्रहसन के समान ही यथायोग्य वीथी के अङ्ग भी हुआ करते हैं। समुद्रमंथन या अमृतमन्थन – समवकार का उदाहरण है।

विशेष : विद्रव – उपद्रव, नालिका – दो घड़ी की एक नालिका होती है, उपरोध – घिराव।

2.2.8 वीथी

वीथी तु कैशिकीवृत्तौ सन्ध्यङ्गस्तु भाणवत्।। 68।।

रसः सूच्यस्तु श्रृंगारः स्पृशेदपि रसान्तरम्।

युक्ता प्रस्तावनाख्यातैरङ्गरुद्‌द्घत्यकादिभिः।। 69।।

एवं वीथी विधातव्या द्वयेकपात्रप्रयोजिता।

अर्थ – वीथी तो कैशिकी वृत्ति में होती है। इसमें सन्धि के अङ्ग तथा अङ्क भाण के समान होते हैं (अर्थात् मुख एवं निर्वहण दो सन्धियाँ होती है। और एक अङ्क होता है) इसका प्रधान सूच्य रस श्रृंगार होता है किन्तु अन्य रसों का भी स्पर्श करना चाहिए। यह प्रस्तावना के उदघात्यक आदि अङ्गों से युक्त होती है। इस प्रकार रस या दो पात्रों के द्वारा प्रयुक्त वीथी की योजना करनी चाहिए। वकुल वीथी या इन्दुलेखा वीथी के उदाहरण हैं।

विशेष : विधातव्यः – योजना करना

2.2.9 अङ्क

उत्सृष्टिकाङ्क प्रख्यातं वृत्तं बुद्धया प्रपञ्चयेत्।। 70।।

रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः।

भाणवत्सन्धिवृत्त्यङ्गर्युक्तिः स्त्रीपरिदेवितैः।। 71।।

वाचा युद्धं विधातव्यं यथा जयपराजयौ।

अर्थ – उत्सृष्टिकाङ्क में इतिहास प्रसिद्ध इतिवृत्त को अपनी बुद्धि द्वारा कवि को विस्तृत कर लेना चाहिए। इसमें करुण अङ्गी रस होता है और साधारण जन नायक होते हैं। इसमें भाग के समान सन्धि (मुख – निर्वहण) वृत्ति तथा उनके अङ्गों की योजना होती है। यह स्त्रियों के विलाप से युक्त होता है। इसमें वाग्युद्ध का वर्णन करना चाहिए तथा जय और पराजय –जय का भी वर्णन करना चाहिये। अङ्क से भेद दिखाने के लिए अङ्क नामक रूपक को **उत्सृष्टाङ्क** कहा जाता है।

विशेष : प्रपञ्चयेत – विस्तार करना, परिदेवित।ः – रोदन करना

2.2.10 ईहामृग

मिश्रमीहामृगे वृत्तं चतुरङ्क त्रिसन्धिमत्।। 72।।

नरदिव्यावनियमान्नायकप्रतिनायकौ।

ख्यातौ धीरोद्धतावन्त्यो विपर्यासादयुक्तकृत्।। 73।।

दिव्यस्त्रियमनिच्छन्तीमपहारादिनेच्छतः।

श्रृंगाराभासमप्यस्य किञ्चित्किञ्चित्प्रदर्शयेत्।। 74।।

संरम्भं परमानीय युद्धं व्याजान्निवारयेत्।

वधप्राप्तस्य कुर्वीत वधं नैव महात्मनः।। 75।।

अर्थ – ईहामृग नामक रूपक में इतिवृत्त मिश्रित (ख्यातारकाट) होता है जो चार अङ्कों एवं तीन सन्धियों में विभक्त होता है। बिना किसी नियम के नर तथा देव नायक एवं प्रतिनायक होते हैं, जो इतिहास प्रसिद्ध तथा धीरोद्धत होते हैं। इनमें से अन्तिम (प्रतिनायक) भूल (भ्रान्ति) से अनुचित कार्य किया करता है। वह न चाहती हुई दिव्य स्त्री को अपहरण आदि द्वारा प्राप्त करना चाहता है, इस प्रकार का वर्णन करके कवि को कुछ मात्रा में श्रृंगाराभास प्रदर्शित करना चाहिये, युद्ध को चरम सीमा तक पहुँचाकर किसी बहाने से रोक देना चाहिये तथा वध की अवस्था तक पहुँचे हुए वीर का वध नहीं करना चाहिये। जैसे – कुसुम शेखर या कुसुमशेखर विजय।

विशेष : विपर्यास – उल्टा, व्याजात् – बहाने से, अनेच्छतः – न चाहते हुए – श्रृंगाराभास – श्रृंगार का आभास, संरम्भं – युद्ध।

इत्थं विचिन्त्य दशरूपकलक्ष्ममार्ग –

मालोक्य वस्तु परिभाव्य कविप्रबन्धान्।

कुर्यादयत्नवदलङ्कृतिभिः प्रबन्धं

वाक्यैरुदारमधुरैः स्फुटमन्दवृत्तैः।। 76।।

अर्थ – इस प्रकार दश रूपकों के (लक्ष्य अर्थात्) लक्षणों के मार्ग का एवं वस्तु का अच्छी प्रकार विचार कर तथा कवियों के प्रबन्धों का (परिभावन) अनुशीलन करके कवि को (ऐसे) प्रबन्ध = रूपक की रचना करनी चाहिए जिसमें (आकृत्रिमता =) स्वाभिकता हो अथवा अलङ्कारों की स्वाभाविकता, वाक्यों की (उदारता =) स्पष्टार्थता तथा मधुरता हो और छन्दों की स्पष्टता एवं (मन्दता =)सरलता हो।। 76।।

खण्ड –ख

इकाई – 3 समीक्षात्मक प्रश्न

1) दशरूपक के कर्ता कौन हैं ? ग्रन्थ का सम्पूर्ण परिचय दीजिए।
2) रूपक के भेदों का निरूपण कीजिये।
3) नृत्त एवं नृत्य के भेद को स्पष्ट कीजिये।
4) अर्थप्रकृतियाँ किसे कहते हैं ? किसी एक का परिचय उदाहरण सहित दीजिये।
5) कार्यावस्थायें किसे कहते हैं ? किसी एक का परिचय उदाहरण सहित कीजिये।
6) संधियों का निर्माण किस प्रकार होता है ?
7) मुख सन्धि का लक्षण देते हुए, उसके अङ्गों को बताइये। यथा सम्भव उदाहरण भी दीजिये।
8) अर्थोपक्षेपकों का परिचय दीजिये।
9) नाट्य धर्म किसे कहते हैं ? संवाद के प्रकारों का वर्णन कीजिये।
10) जनान्तिक एवं अपवारित किसे कहते हैं ? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
11) आकाशभाषित को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।
12) पताकास्थानक के स्वरूप का विवेचन उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।
13) भाण का लक्षण देते हुए उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।
14) प्रहसन के लक्षण उदाहरण सहित दीजिये।
15) डिम एवं समवकार के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसके उदाहरण दीजिये।
16) उत्सृष्टाङ्क किसे कहते हैं ? उदाहरण सहित लक्षण दीजिये।
17) वीथी के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्नों के उत्तर –

1) दशरूपक के कर्ता धनञ्जय है। ग्रन्थ में 4 प्रकाश हैं। यहाँ सभी प्रकाशों में प्रतिपाद्य विषय का विवरण भी दिया जाना चाहिए।

2) रूपक के 10 भेद होते हैं – नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अङ्क, ईहामृग।

3) ताल एवं लय पर आश्रित, अभिनय शून्य अङ्ग विक्षेप को नृत्त, एवं भाव पर आश्रित रसों पर आश्रित, गात्र विक्षेप को नृत्य कहते हैं। नृत्य करने वाले को तर्क कहते हैं पदार्थाभिनय को नृत्य कहते हैं। यह मार्ग भी कहलाता है तथा नृत को देशी भी कहते हैं।

4) वस्तु के अन्तर्गत फलसिद्धि के हेतुओं को अर्थ प्रकृतियाँ कहते हैं। ये – बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य हैं।

बीज – स्वल्पोदिष्टस्तु तद्धेतुबीजं विस्तार्यनेकधा।

अल्प शब्दों में कहा गया वह हेतु बीज कहलाता है। जिसका आगे चलकर अनेक प्रकार

से विस्तार किया जाता है। जैसे – रत्नावली में द्वीपादन्यस्माद् – 1/6 से प्रारम्भेऽस्मिनस्वामिनो (9/7) तक।

5) नायकादि द्वारा अपने अभीष्ट फल प्राप्ति के लिए जो कार्य प्रपञ्च किया जाता है उसकी पाँच अवस्थायें होती है। – आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम। आरम्भ का लक्षण – "औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे"। अधिक फल प्राप्ति के लिए उत्सुकता मात्र ही आरम्भ कहलाता है – जैसे रत्नावली में – "प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ देवेन चेत्थं दत्तहस्तावलम्बे" इस श्लोक में उदयन के निमित्त प्रारम्भ किये गये कार्य की सूचना यौगन्धरायण के माध्यम से दी गयी है।

6) एक कार्यावस्था एवं अर्थ प्रकृति के संयोग से एक संधि का निर्माण होता है।

7) मुखसंधि – "मुखं बीजसमत्पर्त्तिनार्धरससम्भवाः अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भ समन्वयात्"

नाना अर्थ एवं रस को देने वाली, बीज एवं आरम्भ से युक्त मुख संधि होती है। इसके 12 अर्थ होते हैं – उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान परिभावना, उदभेद, भेद तथा करण।

उपक्षेप – बीजन्यास उपक्षेपः – बीज का न्यास (रखना) ही उपक्षेप होता है। जैसे रत्नावली में – "द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि.............."

8) नीरस किन्तु सूच्य कथाशों की सूचना देने हेतु अर्थोपेक्षकों की योजना की जाती है, जो पांच प्रकार के होते हैं – विष्कम्भ, चूलिका, अङ्कास्य, अङ्कावतार, प्रवेशक।

9) नाट्य धर्म नाट्य की प्रकृति अथवा अभिनय की शास्त्रोक्त मर्यादा को कहते हैं। नाट्य धर्म की दृष्टि से कथावस्तु, तीन प्रकार की होती है – सर्वश्राव्य, नियत श्राव्य, अश्राव्य। सर्व श्राव्य प्रकाश भाषण को एवं अश्राव्य स्वगत भाषण को कहते हैं। नियत श्राव्य का जो नियत लोगों के सुनने हेतु होता है – दो भेद होता है – जनान्तिक, अपवारित।

10) जनान्तिक नियतश्राव्य का भेद है – अंगुष्ठ एवं कनिष्ठ को टेढ़ा कर, शेष तीन अंगुलियों को मुख पर रखकर एक पात्र दूसरे से भाषण करता है, उसे जनान्तिक कहते हैं।

अपवारित – रङ्ग मंच पर स्थित पात्रों की ओर मुँह फेरकार जब कोई गुप्त बात अन्य पात्र से की जाती है, वहाँ अपवारित होता है।

11) आकाश भाषित – **किं ब्रवीष्येवमित्यादि बिना पात्रं ब्रवीति यत्।**
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्।।

जब अकेला पात्र किसी दूसरे पात्र के बिना, स्वयं कहता एवं उसका उत्तर देता है (प्रश्नोत्तर के रूप में) वहाँ आकाशभाषित होता है।

12) पताका स्थानक – **प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम्।**
पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम्।।

प्रस्तुत एवं भावी कथावस्तु की समान इति वृत्तया समान विशेषण द्वारा अन्योक्ति रूप में जहाँ सूचना दी जाती है उसे पताकास्थानक कहते हैं।

13) भाण – कोई चतुर बुद्धिमान, विट अपने द्वारा अथवा किसी के द्वारा अनुभूत धूर्तचरित का आकाशभाषित द्वारा सम्बोधन और उत्तर प्रत्युत्तर करता है तथा शौर्य और सौभाग्य के वर्णन द्वारा वीर और श्रृंगाररस की सूचना देता है वहाँ भाण होता है। इसमें भारती वृत्ति की प्रधानता होती है। एक अङ्क होता है और कथावस्तु, कवि कल्पित होती है। अपने अंगों सहित मुख एवं निर्वहण संधियों की योजना की जाती है। तथा लास्य के दस अंगों की भी योजना की जाती है। जैसे सुदर्शन शर्मा कृत श्रृंगार शेखर, एवं महालिंगशास्त्री कृत मर्कटमदलिकाभाण।

14) प्रहसन – प्रहसन भी भाण की तरह होता है। यह तीन प्रकार का होता है – शुद्ध, वैकृत एवं संकर। शुद्ध प्रहसन – पाखण्डी, विप्र, चेट चेटी तथा विट से व्याप्त होता है। इसमें इन पात्रों के पचित, वंश तथा भाषा से युक्त होता है। तथा हास्य पूर्ण वचनों से युक्त होता है।

विकृत प्रहसन – ल्पाभुकादि वचनों को बोलने वो, उनकी वेष भूषा को धारण करने वाले नपुंसकों, कंचुकियों एवं तपस्वियों से युक्त होता है।

संकीर्ण – वीथी के अंगों से मिश्रित, धूर्तजनों से व्याप्त होता है।

15) डिम का लक्षण – डिम की कथावस्तु प्रसिद्ध (इतिहास प्रसिद्ध) होती है। इसमें कैशिकी के अतिरिक्त अन्य वृत्तियों (आरमटी, सास्वती भारती) का प्रयोग होता है। देव, नेता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस नागादि पात्र होते हैं अथवा भूत, प्रेत, पिशाचादि 16 उद्धत नायक होते हैं। इसमें शृंगार एवं हास्य के अतिरिक्त 6 दीप्त रसों का प्रयोग होता है जिसमें रौद्र रस अंगी होता है। यह माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध उन्यत्रादि चेष्टाओं तथा सूर्यग्रहण के दृश्यों से युक्त होता है। इसमें चार अङ्क तथा विमर्श निधि को छोड़कर शेष चार सन्धियाँ प्रयुक्त होती हैं जैसे त्रिपुरदाह डिम का उदाहरण है।

समवकार – समवकार में आमुख की योजना होती है। इसकी कथावस्तु देवासुरों से सम्बद्ध पौराणिक होती है। 12 नायक होते हैं जो वीर रस से पूर्ण होते हैं। इसमें तीन कपट, तीन द्रिव, तीन शृंगार का प्रयोग होता है। तीन अङ्क होते हैं प्रथम अङ्क में मुख–प्रतिमुख संधियाँ होती हैं इसकी कथा 24 घड़ी (12 नालिका) की होती है। द्वितीय अङ्क की एवं तृतीय की कथा क्रमशः 4 एवं 2 नालिका की होती है। इसमें नगरोपशेध, युद्ध, वाताग्नि आदि उत्पादों के कारण विद्रव का वर्णन होता है। विन्हु नामक अथप्रकृति, प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक की योजना नहीं की जाती। यथा संभव वीथ्यङ्गों का समावेश किया जाता है। जैसे – समुद्रमन्थन।

16) उत्सृष्टाङ्क – इसकी कथा इतिहास प्रसिद्ध होती है। जिसमें बुद्धि द्वारा परिवर्तन कर लिया जाता है। इसमें करूण रस प्रधान होता है। इसमें नायक – पात्र प्राकृत (सामान्य) जन होते हैं। भाव की तरह मुख एवं निर्वहण संधि, भारती वृत्ति, और उसके अंगों की योजना की जाती है। इसमें एक अङ्क होता है तथा स्त्रियों के विलाप से युक्त होता है। इसमें वाग्युद्ध एवं मौखिक जय–पराजय के वर्णन का समावेश किया जाता है। जैसे – शर्मिष्ठा ययाति।

17) वीथी – वीथी कैशिकी वृत्ति में होती है। इसमें सन्धि के अङ्ग तथा अङ्क भाण के समान होते हैं। इसमें मुख–प्रतिमुख संधियों का एक अङ्क होता है। इसमें शृंगार रस सूच्य होता है, अन्य रसो का भी स्वल्प भाषा में स्पर्श (वर्णन) होता है। अङ्गों सहित प्रस्तावना का प्रयोग होता है तथा एक या दो पात्रोंकी योजना की जाती है। वीथी का कोई उदाहरण नहीं प्राप्त होता।

उपयोगी पुस्तकें –

1) दशरूपकम् – केशव मुसलगाँवंकर, प्रका0 चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, यू0पी0।

2) दशरूपकम् – श्री निवास शास्त्री, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, यू0पी0।

3) दशरूपकम् – रमाशंकर तिवारी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, यू0पी0।

4) संस्कृत साहित्य का इतिहास – ए0 वी0 कीथ।

5) संस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला।

Notes

Notes

Notes